दंसणमूलो धम्मो

# आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

आतम बने परमात्मा,
हो शान्ति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी,
महावीर के संदेश में॥

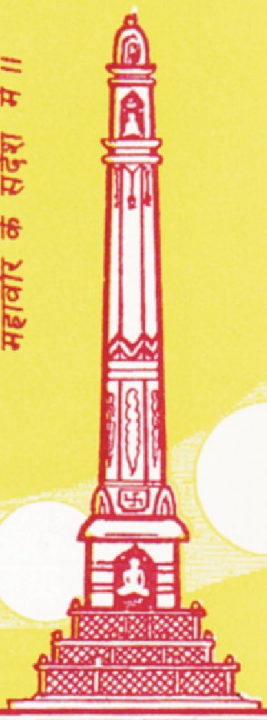

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३३ : अंक १० [३९४] अप्रेल, १९७८

# आत्मधर्म [ ३९४ ]

[ हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक ]

संपादक :
**डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल**

प्रबंध संपादक :
**अखिल बंसल**

कार्यालय :
**श्री टोडरमल स्मारक भवन**
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

**क्या**

१ महावीर वंदना
२ जिनदेशना सुनने का पात्र कौन ?
३ संपादकीय : उत्तम त्याग
४ शुद्धनयोऽभ्युदेति
[समयसार प्रवचन]
५ जीव उपयोगमय है
[नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ समाचार दर्शन
८ प्रबंध संपादक की कलम से

पूज्य स्वामीजी के दक्षिण भारत के प्रवास के समय प्रसिद्ध नगर मद्रास, बेंगलोर तथा हैदराबाद के विशिष्ट प्रभावना के समाचार विशेष होने से इस अंक में स्थायी स्तंभ 'ज्ञान-गोष्ठी' व 'पाठकों के पत्र' नहीं दे पा रहे हैं। इसके लिये क्षमाप्रार्थी हैं।

– प्रबंध संपादक

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३३ [३९४] अंक : १०

# महावीर वंदना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं॥
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव-जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं॥१॥

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में॥
युगपद् विशद् सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में॥२॥

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावें पार है॥
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वंदना शत बार है॥३॥

# जिनदेशना सुनने का पात्र कौन ?

दिनांक २०-३-७८ को बैंगलोर में एवं दिनांक २२-३-७८ को हैदराबाद में प्रवचन करते हुए पूज्य श्री कानजीस्वामी ने कहा —

वह तो नाममात्र का भी जैन नहीं, जिनवाणी सुनने का पात्र भी नहीं—जो मद्य, माँस और मधु का सेवन करता है; जिनमें अगणित त्रसजीव पाये जाते हैं—ऐसे पंच उदुम्बर फलों को खाता है; सड़ा-गला अचार खाता है; रात्रि में भोजन करता है। हमने तो ६९ वर्षों से रात्रि में पानी की बूँद भी नहीं ली है।

इन चीजों का सेवन तो नामधारी जैन को भी नहीं होना चाहिये। रात्रि भोजन में माँस भक्षण का दोष है। रात्रि में अनेक कीड़े-मकोड़े भोजन में पड़ जाते हैं। अथाना-अचार भी नहीं खाना चाहिये, उसमें भी जीव-जन्तु पड़ जाते हैं। मैंने तो विक्रम संवत् १९६५-६६ से अचार नहीं खाया।

पुरुषार्थसिद्धयुपाय के ७४वें श्लोक का उद्धरण देते हुए कहा कि इन्हें त्यागे बिना तो जीव जिनदेशना सुनने का भी पात्र नहीं होता —

अष्टावनिष्टदुस्तरदुरितायतनान्यमूनि परिवर्ज्य।
जिनधर्मदेशनाया भवन्तिपात्राणि शुद्धधियः ॥७४॥

अर्थ—दुःखदायक दुस्तर और पाप के स्थान ऐसे आठ पदार्थों का परित्याग करके निर्मल बुद्धिवाले पुरुष जैनधर्म के उपदेश को सुनने के पात्र होते हैं।

उक्त श्लोक की आधा घंटे तक मार्मिक व्याख्या करते हुए स्वामीजी सभी को अष्ट मूलगुण धारण करने एवं रात्रि भोजन आदि के त्याग करने की प्रेरणा देते रहे।

# सम्पादकीय

## उत्तम त्याग

### एक विश्लेषण

उत्तम त्यागधर्म की चर्चा जब भी चलती है तब-तब प्रायः दान को ही त्याग समझ लिया जाता है। त्याग के नाम पर दान के ही गीत गाये जाने लगते हैं, दान की ही प्रेरणाएँ दी जाने लगती हैं।

सामान्यजन तो दान को त्याग समझते ही हैं; किंतु आश्चर्य तो तब होता है, जब उत्तम त्यागधर्म पर वर्षों व्याख्यान करनेवाले विद्वज्जन भी दान के अतिरिक्त भी कोई त्याग होता है—यह नहीं समझाते या स्वयं भी नहीं समझ पाते।

यद्यपि जिनागम में दान को भी त्याग कहा गया है, दान देने की प्रेरणा भी भरपूर दी गयी है, दान की भी अपनी एक उपयोगिता है, महत्त्व भी है; तथापि जब गहराई में जाकर निश्चय से विचार करते हैं तो दान और त्याग में महान अंतर दिखायी देता है। दान और त्याग बिल्कुल भिन्न-भिन्न दो चीज़ें प्रतीत होती हैं।

त्याग, धर्म है और दान, पुण्य। त्यागियों के पास रंचमात्र भी परिग्रह नहीं होता जबकि दानियों के पास ढेर सारा परिग्रह पाया जा सकता है।

त्याग की परिभाषा श्री प्रवचनसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका (गाथा २३९) में आचार्य जिनसेन ने इसप्रकार दी है —

**निजशुद्धात्मपरिग्रहं कृत्वा बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहनिवृत्तिस्त्यागः।**

निज शुद्धात्म के ग्रहणपूर्वक बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह से निवृत्ति त्याग है।

इसी बात को बारस-अणुवेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा) में इसप्रकार कहा गया है —

**णिव्वेगतियं भावइ मोहं चइऊण सव्व दव्वेसु।**
**जो तस्स हवेच्चागो इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं॥७८॥**

जिनेन्द्र भगवान ने कहा है कि जो जीव संपूर्ण परद्रव्यों से मोह छोड़कर संसार, देह और भोगों से उदासीनरूप परिणाम रखता है; उसके त्यागधर्म होता है।

तत्त्वार्थराजवार्तिक में अकलंक देव सचेतन और अचेतन परिग्रह की निवृत्ति को त्याग कहते हैं।

उक्त कथनोंसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यद्यपि त्याग शब्द निवृत्तिसूचक है, त्याग में बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह का त्याग होता है; तथापि त्यागधर्म में निजशुद्धात्मा का ग्रहण अर्थात् शुद्धोपयोग और शुद्धपरिणति भी शामिल है।

एक बात और भी स्पष्ट होती है कि त्याग परद्रव्यों का नहीं, अपितु अपनी आत्मा में परद्रव्यों के प्रति होनेवाले मोह-राग-द्वेष का होता है। क्योंकि परद्रव्य तो पृथक् ही हैं, उनका तो आज तक ग्रहण ही नहीं हुआ है; अत: उनके त्याग का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? उन्हें अपना जाना है, माना है, उनसे राग-द्वेष किया है; अत: उन्हें अपना जानना, मानना (दर्शनमोह) एवं उनके प्रति राग-द्वेष करना (चारित्रमोह) छोड़ना है।

यही कारण है कि वास्तविक त्याग पर में नहीं, अपने में—अपने ज्ञान में होता है। यही भाव कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने समयसार में इसप्रकार व्यक्त किया है —

**सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परे त्ति णादूणं।**
**तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेयव्वं॥३४॥**

अपने से भिन्न समस्त परपदार्थों को 'ये पर हैं'—ऐसा जानकर जब त्याग किया जाता है, तब वह प्रत्याख्यान अर्थात् त्याग कहा जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वस्तुत: ज्ञान ही प्रत्याख्यान अर्थात् त्याग है।

त्याग ज्ञान में ही होता है अर्थात् पर को पर जानकर उससे ममत्व भाव तोड़ना ही त्याग है। इस बात को समयसार गाथा ३५ की टीका में आचार्य अमृतचंद्र ने सोदाहरण इसप्रकार स्पष्ट किया है—

"जैसे कोई पुरुष धोबी के घर से भ्रमवश दूसरे का वस्त्र लाकर, उसे अपना समझ ओढ़कर सो रहा है और अपने आप ही अज्ञानी हो रहा है; किंतु जब दूसरा व्यक्ति उस वस्त्र का

१. परिग्रहस्थ चेतनाचेतनलक्षणस्य निवृत्तिस्त्याग: इति निश्चीयते। — अध्याय ९, सूत्र ६

छोर पकड़कर खींचता है और उसे नग्न कर (उघाड़कर) कहता है कि 'तू शीघ्र जाग, सावधान हो, यह मेरा वस्त्र बदले में आ गया है, यह मेरा है, सो मुझे दे दे'; तब बार-बार कहे गये इस वाक्य को सुनता हुआ वह, सर्व चिह्नों से भली-भाँति परीक्षा करके, 'अवश्य यह वस्त्र दूसरे का ही है' ऐसा जानकर, ज्ञानी होता हुआ, उस वस्त्र को शीघ्र ही त्याग देता है।

इसी प्रकार ज्ञाता भी भ्रमवश परद्रव्य के भावों को ग्रहण करके उन्हें अपना जानकर अपने में एकरूप करके सो रहा है और अपने आप अज्ञानी हो रहा है; जब श्रीगुरु परभाव का विवेक करके उसे एक आत्मभावरूप करते हैं और कहते हैं कि 'तू शीघ्र जाग, सावधान हो, यह तेरा आत्मा वास्तव में एकज्ञानमात्र ही है' तब बारंबार कहे गये इस आगमवाक्य को सुनता हुआ वह, समस्त चिह्नों से भली-भाँति परीक्षा करके 'अवश्य यह परभाव ही हैं, यह जानकर, ज्ञानी होता हुआ, सर्व परभावों को तत्काल छोड़ देता है।'[१]

उक्त कथन से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि त्याग पर को पर जानकर किया जाता है। दान में यह बात नहीं है। दान उसी वस्तु का दिया जाता है जो स्वयं की हो; परवस्तु का त्याग तो हो सकता है, दान नहीं। दूसरे की वस्तु उठाकर किसी को दे देना दान नहीं, चोरी है।

इसीप्रकार त्याग वस्तु को अनुपयोगी, अहितकारी जानकर किया जाता है; जबकि दान उपयोगी और हितकारी वस्तु का दिया जाता है।

उपकार के भाव से अपनी उपयोगी वस्तु पात्र जीव को दे देना दान है। दान की परिभाषा आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र के सातवें अध्याय में इसप्रकार दी है —

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥

उपकार के हेतु से धन आदि अपनी वस्तु को देना सो दान है।

आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि में लिखा है —

'परानुग्रहबुद्ध्या स्वस्यातिसर्जनं दानम्'[२]

दूसरे का उपकार हो, इस बुद्धि से अपनी वस्तु का अर्पण करना दान है।

---

१. यह आचार्य अमृतचंद्र की संस्कृत टीका का हिंदी अनुवाद है।

२. अध्याय ६, सूत्र १२ की टीका

दान में परोपकार का भाव मुख्य रहता है और अपने उपकार का गौण; किंतु त्याग में स्वोपकार ही सब कुछ है, दूसरों के उपकार के लिये मोह-राग-द्वेष नहीं त्यागे जाते हैं। यह बात अलग है कि अपने त्याग से प्रेरणा पाकर या अन्य किसी प्रकार से पर का भी उपकार हो जावे।

यदि कोई दान देता है तो उसका कर्तव्य है कि जिस काम के लिये दान दिया है, उसकी देखरेख भी करे। कहीं ऐसा तो नहीं हो रहा है कि आपने धर्मशाला तो यात्रियों के ठहरने के लिये बनाई है और उसे किराये से उठा दिया गया हो; आपने पैसा तो दिया प्राचीन जिनालयों के जीर्णोद्धार के लिये और उससे अधिकारियों ने अपने आराम के लिये एयरकंडीशन लगा लिया हो; आपने पैसा तो दिया वीतरागता के प्रचार-प्रसार के लिये और उससे राग को धर्म बताकर प्रचार किया जा रहा हो; आपने पैसा तो दिया धार्मिक-नैतिक शिक्षा के लिये और उससे शिक्षा दी जा रही हो कानून की।

कुछ लोग कहते हैं कि आपने तो दान दे दिया। अब आपको क्या मतलब कि उसका क्या हो रहा है, वह कहाँ खर्च हो रहा है, उसे कौन खा रहा है ? जब आपने उसे त्याग ही दिया तो उससे फिर क्या प्रयोजन ?

ऐसी बातें वही लोग करते हैं जो या तो दान की परिभाषा नहीं जानते या फिर कुछ गड़बड़ी करना चाहते हैं, करते हैं; क्योंकि वे चाहते हैं कि वे चाहे जो करें, उन्हें कोई टोका-टोकी न करे। जिसे सही काम करना है, जो पैसा जिस उद्देश्य से प्राप्त हुआ है—उसी में लगाना है; उन्हें इससे क्या ऐतराज हो सकता है कि दातार उनसे यह क्यों पूछता है कि जिस उद्देश्य से जिस कार्य के लिये उसने दान दिया था—वह हो रहा है या नहीं, उस उद्देश्य की पूर्ति हो रही है या नहीं ?

वे भूल जाते हैं कि उसने पैसे का त्याग नहीं किया है, वरन किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिये दान दिया है। दान उपकार के विकल्पपूर्वक दिया जाता है, अतः ज्ञानी-दानी को भी व्यवस्था देखने-जानने का सहज विकल्प आता है। ज्ञान-दान में भी जब किसी को कोई कुछ समझाता है तो उसे यह सहज विकल्प आये बिना नहीं रहता कि सामनेवाले की समझ में आ रहा है या नहीं।

दानी को पैसे से मोह छूट नहीं गया है, छूट गया होता तो फिर एक लाख देकर तीन

लाख कमाने को क्यों जाता ? कमाने का पूरा-पूरा यत्न चालू है। इससे सिद्ध है कि पैसे के राग के त्याग के कारण दान नहीं दिया जा रहा है, बल्कि उपकार के भाव से दान दिया जाता है। यह बात अलग है कि उसकी लोभ कषाय कुछ मन्द अवश्य हुई है, अन्यथा दान भी संभव न होता; पर मंद हुई है, अभाव नहीं; अभाव होता तो त्याग होता।

मोह या राग के आंशिक अभाव में भी त्यागधर्म प्रकट होता है। यही कारण है कि त्यागी को उसका ध्यान भी नहीं आता जिसे उसने त्यागा है। आना भी नहीं चाहिये, आवे तो त्याग कैसा ? उसे त्यागी हुई वस्तु के संभाल का भी विकल्प नहीं आता, क्योंकि अब वह उसे अपनी मानता-जानता ही नहीं एवं उससे उसे राग भी नहीं रहा। उसका जो होना हो सो हो, उसे उससे क्या ?

चक्रवर्ती जब राज-पाट त्याग कर नग्न दिगम्बर साधु बनते हैं तो उन्हें यह चिंता नहीं सताती कि इस राज का क्या होगा ? इसे कौन सम्भालेगा ? यदि हो तो फिर वे त्यागी नहीं। उससे उन्हें क्या प्रयोजन ? उन्होंने अपने हित के लिये, अपनी आत्मा की संभाल के लिये राज-पाट त्यागा है। वे यदि राज-पाट की ही चिंता करते रहें तो फिर उन्होंने त्यागा ही क्या है ? राज का वे करते भी क्या थे ? मात्र चिंता ही करते थे, सो कर ही रहे हैं।

इसप्रकार हम देखते हैं कि दान में परोपकार का भाव मुख्य रहता है और त्याग में आत्महित का।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि जो अपना है, वह दूसरों को दिया नहीं जा सकता, जो दिया जा सकता है वह अपना नहीं हो सकता; 'पर' पर है, 'स्व' स्व है; स्व का दिया जाना संभव नहीं और पर का ग्रहण संभव नहीं—एक ओर तो आप यह कहते हैं। और दूसरी ओर यह भी कहते हैं कि दान अपनी चीज़ का दिया जाता है—जब पर अपना है ही नहीं तब उसका क्या त्याग करना और जो दिया ही नहीं जा सकता, उसका क्या देना ? इसीप्रकार जब कोई किसी का भला-बुरा कर ही नहीं सकता, सब अपने भले-बुरे के कर्ता-धर्ता स्वयं हैं, तो फिर परोपकार की बात भी कहाँ ठहरती है ?

आपकी बात बिल्कुल ठीक है, पर समझने की बात यह है कि 'दान' व्यवहारधर्म है और 'त्याग' निश्चयधर्म।

वे धनादि परपदार्थ जिन पर लौकिक दृष्टि से अपना अधिकार है, व्यवहार से अपने हैं; अत: उन्हें अपना जानकर ही दान दिया जाता है। लेन-देन स्वयं व्यवहार है, निश्चय में तो लेने-देने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। रही परपदार्थ के त्याग की बात, सो पर को पर जानना ही उनका त्याग है—इससे अधिक त्याग और क्या है ? वे तो पर हैं ही, उनको क्या त्यागें ? पर बात यह है कि उन्हें हम अपना मानते हैं, उनसे राग करते हैं; अत: उनको अपना मानना और उनसे राग करना त्यागना है। इसलिये यह ठीक ही कहा है कि पर को पर जानकर उनके प्रति राग का त्याग करना ही वास्तविक त्याग है।

गहराई से विचार करें तो त्याग, मोह-राग-द्वेष का ही होता है; पर-पदार्थ तो मोह-राग-द्वेष के छूटने से स्वयं छूट जाते हैं। वे छूटे हुये ही हैं। इसीलिये भगवान को 'राग-द्वेषपरित्यागी' कहा गया है।

यदि आप कहें कि अभी तो यह कहा था कि त्याग पर का होता है और अब कहने लगे कि त्याग मोह-राग-द्वेष का होता है ?

भाई ! आध्यात्मिक दृष्टि से मोह-राग-द्वेष भी तो पर ही हैं। यद्यपि वे आत्मा में उत्पन्न होते हैं तथापि वे आत्मा के स्वभाव नहीं, अत: उन्हें भी आध्यात्मिक शास्त्रों में 'पर' कहा गया है।

जहाँ तक परोपकार की बात है, उसके संबंध में बात यह है कि यद्यपि कोई किसी का भला-बुरा नहीं कर सकता तथापि ज्ञानी को भी दूसरों के भले करने का भाव आये बिना रहता नहीं है, क्योंकि अभी उसके राग-भाव विद्यमान है। दूसरी बात यह है कि निश्चय से कोई किसी का भला-बुरा नहीं कर सकता, पर व्यवहार से तो शास्त्रों में भी एक-दूसरे के भले-बुरे करने की बात कही गयी है; भले ही वह कथन उपचरित हो, कथन मात्र हो, पर है तो। 'दान' व्यवहारधर्म है, अत: वह परोपकार संबंधी विकल्पपूर्वक ही होता है। यही कारण है कि वह पुण्यबंध का कारण होता है, बन्ध के अभाव का कारण नहीं। जो व्यक्ति उसे निश्चयधर्म मानकर बंध के अभाव (मुक्ति) का कारण मान बैठते हैं वे तो गलती करते ही हैं, साथ ही वे भी गलती करते हैं जो उसे पुण्यबन्ध का कारण भी नहीं मानते अर्थात् व्यवहारधर्म भी स्वीकार नहीं करते।

त्याग खोटी चीज़ का किया जाता है और दान अच्छी चीज़ का दिया जाता है। यही कहा जाता है कि क्रोध छोड़ो, मान छोड़ो, माया छोड़ो, लोभ छोड़ो; यह कोई नहीं कहता कि ज्ञान छोड़ो। जो दु:खस्वरूप हैं, दु:खकार हैं, आत्मा का अहित करनेवाले हैं—वे मोह-राग-द्वेषरूप आस्रवभाव ही हेय हैं, त्यागने योग्य हैं। इनका ही त्याग किया जाता है। इनके ही साथ इनके आश्रयभूत अर्थात् जिनके लक्ष्य से मोह-राग-द्वेष भाव होते हैं—ऐसे पुत्रादि चेतन एवं धन-मकानादि अचेतन पदार्थों का भी त्याग होता है। पर मुख्य बात मोह-राग-द्वेष के त्याग की ही है, क्योंकि मोह-राग-द्वेष के त्याग से इनका त्याग नियम से हो जाता है; किंतु इनके त्याग देने पर भी यह गारंटी नहीं कि मोह-राग-द्वेष छूट ही जावेंगे।

बहुत से लोग तो त्याग और दान को पर्यायवाची ही समझने लगे हैं। किंतु उनका यह मानना एकदम गलत है। ये दोनों शब्द पर्यायवाची तो हैं ही नहीं, अपितु कुछ अंशों में इनका भाव परस्पर एक-दूसरे से विरुद्ध पाया जाता है।

यदि ये दोनों शब्द एकार्थवाची होते तो एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग आसानी से किया जा सकता था। किंतु जब हम इसप्रकार का प्रयोग करके देखते हैं तो अर्थ एकदम बदल जाता है। जैसे दान चार प्रकार का कहा गया है—(१) आहारदान, (२) औषधिदान, (३) ज्ञानदान, और (४) अभयदान। अब जरा उक्त चारों शब्दों में 'दान' के स्थान पर 'त्याग' शब्द का प्रयोग करके देखें तो सारी स्थिति स्वयं स्पष्ट हो जाती है।

क्या आहारदान और आहारत्याग एक ही चीज़ हैं ? इसीप्रकार क्या औषधिदान और औषधित्याग को एक कहा जा सकता है ?

नहीं, कदापि नहीं; क्योंकि आहारदान और औषधिदान में दूसरे पात्र-जीवों को भोजन और औषधि दी जाती है, जबकि आहारत्याग और औषधित्याग में आहार और औषधि का स्वयं सेवने करने का त्याग किया जाता है। आहारत्याग और औषधित्याग में किसी को कुछ देने का सवाल ही नहीं उठता। इसीप्रकार आहारदान और औषधिदान में आहार और औषधि के त्याग का (नहीं खाने का) भी प्रश्न नहीं उठता।

आहारदान दीजिए और स्वयं भी खूब खाइये, कोई रोक-टोक नहीं; पर आहार का त्याग किया तो फिर खाना-पीना नहीं चलेगा।

आहार और औषधि के संबंध में कहीं कुछ अधिक अटपटा नहीं भी लगे, किंतु जब 'ज्ञानदान' के स्थान पर 'ज्ञानत्याग' शब्द का प्रयोग किया जाये तो बात एकदम अटपटी लगेगी। क्या ज्ञान का भी त्याग किया जाता है ? क्या ज्ञान भी त्यागने योग्य है ? क्या ज्ञान का त्याग किया भी जा सकता है ?

इसीप्रकार की बात अभयदान और अभयत्याग के बारे में समझना चाहिये।

एक बात और भी समझ लीजिये। दान में कम से कम दो पार्टी चाहिये और दोनों को जोड़नेवाला माल भी चाहिये। आहार देनेवाला, आहार लेनेवाला और आहार; औषधि देनेवाला, औषधि लेनेवाला और औषधि—इन तीनों के बिना आहारदान या औषधिदान संभव नहीं है। यदि लेनेवाला नहीं तो देंगे किसे ? यदि वस्तु न हो तो देंगे क्या ? पर त्याग के लिये कुछ नहीं चाहिये। जो अपने पास नहीं है—त्याग उसका भी किया जा सकता है। जैसे 'मैं शादी नहीं करूँगा' इसमें किस वस्तु का त्याग हुआ ? शादी का। लेकिन शादी की ही कहाँ है ? जब शादी की ही नहीं तो त्याग किसका ? करने का भाव का।

इसीप्रकार सर्व परिग्रह का त्याग होता है, पर सर्व परपदार्थरूप परिग्रह है कहाँ हमारे पास ? उसके ग्रहण करने के भाव का ही त्याग होता है।

त्याग के लिये हम पूर्णतः स्वतंत्र हैं। उसमें हम जिसे त्यागें, उसे लेनेवाला नहीं चाहिये, वस्तु भी नहीं चाहिये।

इसप्रकार हम देखते हैं कि दान एक पराधीन क्रिया है, जबकि त्याग पूर्णतः स्वाधीन। जो क्रिया दूसरों के बिना संपन्न न हो सके, वह धर्म नहीं हो सकती। धर्म पर के संयोग का नाम नहीं, अपितु वियोग का है। कम से कम त्यागधर्म में तो पर के संयोग की अपेक्षा संभव नहीं है; त्याग शब्द ही वियोगवाची है। यद्यपि इसमें शुद्धपरिणति सम्मिलित है, परन्तु पर का संयोग बिल्कुल नहीं।

[उत्तरार्द्ध अगले अंक में]

# शुद्धनयोऽभ्युदेति

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथराज 'समयसार' की अमृतचंद्राचार्यकृत 'आत्मख्याति' टीका के बीच-बीच में अनेक महत्त्वपूर्ण छंद आये हैं, जिन्हें कलश कहते हैं। गाथा १३वीं की टीका में समागत कलश नं० १० पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

**आत्मस्वभावं परमभावभिन्नमापूर्णमाद्यंतविमुक्तमेकम्।**
**विलीनसंकल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥१०॥**

शुद्धनय आत्मस्वभाव को प्रकट करता हुआ उदयरूप होता है। वह आत्मस्वभाव को परद्रव्य के भाव तथा परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपने विभाव—ऐसे परभावों से भिन्न प्रगट करता है। तथा संपूर्णरूप से पूर्ण, समस्त लोकालोक का ज्ञाता, आदि-अंत से रहित प्रगट करता है। सर्वत्र भेद-भावों से रहित एकाकार प्रगट करता है, जिसमें समस्त संकल्प-विकल्प के समूह विलीन हो गये हैं—ऐसा प्रगट करता है। ऐसा शुद्धनय प्रकाशरूप होता है।

चिदानंदस्वरूपी आत्मा का लक्ष करे, वह शुद्धनय है। 'मैं ज्ञानानंद स्वरूप हूँ'—इसप्रकार वह शुद्धनय आत्मा को पर्याय में प्रगट करता है। अनादि काल से श्रद्धा और ज्ञान में आत्मा प्रगट नहीं था, रागरूप अहंबुद्धि थी—जिसका अभाव होकर सच्ची बुद्धि उत्पन्न हुई, सम्यग्दर्शन और ज्ञान का उदय हुआ। यह चतुर्थ गुणस्थान की बात है।

शुद्धनय का विषय ही सम्यग्दर्शन का विषय है। 'मैं शरीर और कर्म आदि परद्रव्यों से भिन्न हूँ। परद्रव्यों के निमित्त से होनेवाले विकारी भावों में भिन्न हूँ'—इसप्रकार शुद्धनय जानता है।

पहले पर से नास्तिरूप कहा, अब अस्ति से बात करते हैं। आत्मस्वभाव समस्तरूप से पूर्ण है—ऐसा शुद्धनय बताता है। 'आत्मस्वभाव पूर्ण है'—ऐसा कहकर निरपेक्ष ध्रुव-स्वभाव की पूर्ण मर्यादा बतायी है। 'समस्तरूप से पूर्ण'—ऐसा कहकर संपूर्ण द्रव्य बताया है। जैसे

सोने के सिक्के लेते समय विश्वास होता है कि इनमें से विविध कलापूर्ण आभूषण बन सकेंगे; उसीप्रकार आत्मा में केवलज्ञान शक्ति भरी हुई है—जो कि प्रगट होनेवाली है, उसके संपूर्ण अभेद-स्वभाव को देखते हुए शुद्धनय उसमें भेद नहीं करता।

पूर्णस्वभाव में हीन या पूर्ण अवस्था के भेद नहीं होते; मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय और केवलज्ञान इत्यादि कर्म के निमित्त की अपेक्षा बताते हैं; उपशम, क्षयोपशम, उदय और क्षायिकभाव इन सबमें पर की अपेक्षा का भेद होता है—वह सब भेद शुद्धनय में गौण है। शुद्धनय का विषय निरपेक्ष पूर्णस्वभाव होने से वह शुद्धनय पारिणामिक द्रव्यस्वभाव सहज एकरूप अखंडरूप से बताता है—ऐसा ही सम्यग्दर्शन का स्वविषय है। उसे प्रगट करनेवाले शुद्धनय का स्वाश्रित अनुभव चौथे गुणस्थान में विकल्प को तोड़कर होता है। उसमें बाह्य साधन नहीं है; स्वभाव स्वयं ही कारण है।

और वह शुद्धनय आत्मस्वभाव को अनादि अनन्त एकरूप प्रगट करता है। कर्म के निमित्त से अल्पज्ञता थी और कर्म के अभाव में सर्वज्ञता प्रगटी—ऐसी बात आत्मा में है ही नहीं। शुद्धनय तो परिणामिकभाव को प्रगट करता है। उदयभाव अनादिसान्त है, क्षयोपशमभाव सादिसान्त है, उपशमभाव सादिसान्त है, और क्षायिकभाव सादिअनंत है। केवलज्ञान सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। पारिणामिकभाव अनादिअनन्त है और शुद्धनय का विषय है। यह धर्म की प्रथम क्रिया है। 'मैं पर से त्रिकाल भिन्न औदयिक आदि चार भावों से निरपेक्ष, परिपूर्ण, परमपारिणामिकभावरूप हूँ'—ऐसी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है।

जैसे पानी का शीतल स्वभाव किसी ने बनाया नहीं है; उसीप्रकार अनंत गुणसमुदाय की रचना के रूप में पवित्र वीतराग आत्मस्वभाव त्रिकाल एकरूप अपनेरूप से है और पररूप से नहीं है, उसे किसी ने बनाया नहीं है, वह किसी समय उत्पन्न नहीं हुआ है। 'जो है'—उसकी उत्पत्ति या नाश किसी संयोग-क्षेत्र-काल या भाव में नहीं होता। अखंड स्वयंसिद्ध आत्मा की रचना किसी ने नहीं की है; वह किसी पर अवलंबित नहीं है, और प्रतिसमय परिपूर्ण हूँ—ऐसे नित्यपारिणामिकभाव को शुद्धनय जानता है।

शुद्धनय आत्मस्वभाव को गुणों और पर्यायों के भेद से पृथक् प्रगट करता है। द्रव्यार्थिकनय वर्तमान पर्याय को गौण करके सामान्य स्वभाव को विषय बनाता है। यहाँ द्रव्य

अर्थात् संपूर्ण द्रव्य नहीं। पर्यायसहित द्रव्य तो प्रमाण का विषय है। भेद-भावों से रहित एकाकार आत्मा को शुद्धनय प्रगट करता है। यह निर्विकल्प शुद्धनय की बात है।

और फिर वह, आत्मस्वभाव को एक सर्वभेद-भावों से (द्वैतभावों से) रहित एकाकार प्रगट करता है; और जिसमें समस्त संकल्प-विकल्प के समूह विलीन हो गये हैं—ऐसा प्रगट करता है।

ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, राग-द्वेषादि भावकर्म और देहादि नोकर्मरूप ही मैं हूँ; इसप्रकार पर में एकत्व का निश्चय सो संकल्प है और ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में जो भेद मालूम होता है, सो विकल्प है।

ये ज्ञेय भिन्न-भिन्न हैं, इसीलिये ज्ञान में भेद पड़ते हैं—ऐसा मानना अनंतानुबंधी विकल्प है। आत्मस्वभाव के आश्रय से ऐसे संकल्प-विकल्पों का अभाव होकर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

प्रमाण-नय-निक्षेप, नवतत्त्व, छहद्रव्य इत्यादि का मन द्वारा विचार करने पर तत्संबंधी अनेक विकल्परूप राग में एकाकार होकर अनेक भेदों को प्राप्त करना तथा यह भूल जाना कि 'मैं पृथक् साक्षी ज्ञायक ही हूँ'—यह सब अज्ञानी के विकल्प हैं। ज्ञानी के तो वह ज्ञेय हैं, क्योंकि उसकी दृष्टि तो अखंड गुण पर पड़ी है; पूर्ण एकत्वस्वरूप शुद्धसाध्य की महिमा अखंड ज्ञानरूप से आत्मा में ही प्रवर्तमान रहती है।

ज्ञानी वर्तमान पुरुषार्थ की अशक्ति से शुभाशुभ विकल्प से युक्त होता है, किंतु साथ ही पृथक्त्व की प्रतीति है और राग का निषेध रहता है, इसीलिये एकरूप ज्ञायकस्वभाव का लक्ष स्थिर करके अनेक भेदरूप पर-विषय को जानते हुए भी अपने में अखंड ज्ञान-स्वभाव का ही अनुभव करता है। 'मैं अपने को जानता हूँ'—इसप्रकार के एकत्व का निश्चय ज्ञानी का संकल्प है, और ज्ञेयों के भेद को भिन्नरूप से जानने पर दूसरे की ओर की वृत्ति को खींचकर एकाकार ज्ञानमात्र का अनुभव करना सो ज्ञानी का विकल्प है।

अहो! इस तेरहवीं गाथा में भूल को भुला ही दिया है। संपूर्ण समयसार की प्रारंभिक जड़ इसी गाथा में विद्यमान है। अरे! पूर्व की भूल थी भी नहीं—इसप्रकार भूल को भुला देनेवाली यह गाथा है। इसे न समझा जा सके, ऐसी तो बात ही नहीं है। भूल तो है ही कहाँ? थी

ही कब ? भूल कभी है ही नहीं। स्वभाव ही त्रिकाल प्रकाशमान है।

संपूर्ण मार्ग स्वसन्मुख पुरुषार्थदशा का है। इस समयसार की प्रत्येक गाथा मोक्षदायिनी है। गाथा में मोक्ष नहीं, किंतु समझ में मोक्ष है।

राग-द्वेषयुक्त अवस्था के समय भी आत्मा का शुद्धस्वभाव प्रकाशमान है। स्वभाव की शक्ति त्रिकाल है, इस शुद्धस्वभाव का अनुभव कर! इसप्रकार श्री परमगुरु आशीर्वाद देते हैं।

## स्व से जोड़ : पर से तोड़

आत्मा अपने ज्ञान-दर्शन-आनंदस्वरूप भावों का ही स्वामी है और वे ज्ञान-दर्शन-आनंद के भाव ही आत्मा का स्व है; इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी आत्मा का स्व नहीं है और आत्मा उसका स्वामी नहीं है।

इस जगत में मेरा क्या है और किसके साथ मुझे परमार्थ संबंध है, उसके भान बिना, पर को अपना मानकर पर के साथ संबंध जोड़कर जीव संसार में भटक रहा है। आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! तेरा 'स्व' क्या है व तेरा वास्तविक संबंध किसके साथ है उसे पहिचान। ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप जो तेरे भाव हैं वही तेरा स्व है और उसी का तू स्वामी है—ऐसा जानकर अपने स्वभाव के साथ संबंध जोड़ और पर के साथ संबंध तोड़—अर्थात् स्व से एकत्व कर और पर से विभक्त हो। ऐसे एकत्व-विभक्तपने में ही तेरी शोभा है।

—पूज्य स्वामीजी

# जीव उपयोगमय है

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की दसवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है—

**जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।**
**णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विहावणाणं ति॥१०॥**

जीव उपयोगमय है। उपयोग ज्ञान और दर्शन है। ज्ञानोपयोग दो प्रकार का है—स्वभावज्ञान और विभावज्ञान।

यहाँ उपयोग का लक्षण कहा है। जीव उपयोगमय है, उपयोग का अर्थ परिणाम समझना। आत्मा चेतन है और चैतन्य उसका स्वभाव है। उस चैतन्य को अनुसरण करके वर्तनेवाला परिणाम उपयोग है।

देखो, यह उपयोग की व्याख्या। उपयोग की यह व्याख्या सब प्रकार के उपयोगों में लागू पड़ेगी। उपयोग किसी पर को या इंद्रियों को अवलंबन नहीं करता, किंतु चैतन्य को ही अनुसरण करके होता है।

उपयोग धर्म है और जीव धर्मी है। उपयोग स्वभाव की पर्याय है, अतः वह धर्म है और जीव पर्याय का धारण करनेवाला है, अतः वह धर्मी है। जितने भी उपयोग के प्रकार होते हैं वे किसी दूसरे से नहीं होते, अपितु जीव के ही धर्म हैं। उपयोग चाहे मतिज्ञानोपयोग हो, चाहे त्रिकाल शुद्धउपयोग हो—वे सभी उपयोग जीव के धर्म हैं और जीव धर्मी है। उपयोग का त्रिकाल एकरूप परिणाम तथा बारह प्रकार के परिणाम—उन सब उपयोगों का इसमें वर्णन है। चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाले परिणामों के कुल चौदह प्रकार हैं—जिनमें दो तो त्रिकालरूप उपयोग, तथा आठ ज्ञान के और चार दर्शन के; इस भाँति चौदह भेद हैं।

चैतन्य को अनुसरण करनेवाला परिणाम उपयोग है, यहाँ पर्याय की व्याख्या है—गुण और द्रव्य का यह वर्णन नहीं है। यह उपयोग धर्म है और जीव उसका धारण करनेवाला धर्मी

है। इंद्रियों अथवा मन के कारण मति-श्रुतज्ञान का उपयोग होता हो—ऐसी बात नहीं है, वह उपयोग भी जीव का धर्म है। उपयोग धर्म है और जीव धर्मी है। इन दोनों में दीपक और प्रकाश जैसा संबंध है। जैसे दीपक है धर्मी और प्रकाश है उसका धर्म; उस दीपक का प्रकाश किसी पर के कारण नहीं है; उसीप्रकार आत्मा चैतन्यदीपक है और उपयोग उसका प्रकाश है। आत्मा है धर्मी और उपयोग है उसका धर्म।

वह उपयोग ज्ञान और दर्शन के भेद से दो प्रकार का है। उनमें से ज्ञानोपयोग के भी दो प्रकार हैं। एक स्वभावज्ञानोपयोग और दूसरा विभावज्ञानोपयोग।

स्वभावज्ञानोपयोग अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय और अविनाशी है। इसमें कारण और कार्य दोनों प्रकार के स्वभावज्ञान आ जाते हैं। भगवान आत्मा उपयोगस्वरूप है। केवलज्ञान वह कार्यस्वभावज्ञानोपयोग है-वह प्रकट होने के बाद अविनाशी ज्यों का त्यों रहता है।

अभी यहाँ प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद नहीं लिये हैं। प्रथम, भेद बतलाकर पश्चात् उसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष की बात करेंगे।

११-१२वीं गाथा में जो स्वरूपप्रत्यक्ष का वर्णन आयेगा वही यहाँ है। स्वभावज्ञान उपयोग है—वह बात की—उसमें से प्रत्यक्ष और परोक्ष की बात गाथा ११-१२ में लेंगे। ११वीं गाथा में 'असहाय' शब्द पड़ा है, उसी पर से टीका में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष की बात निकालेंगे।

स्वभावज्ञानोपयोग के दो भेद हैं। कारणरूपस्वभावज्ञानोपयोग तथा कार्यरूपस्वभाव-ज्ञानोपयोग। उसमें से यहाँ जो कारणरूपस्वभावज्ञानोपयोग है उसी को अग्रिम गाथा में स्वरूपप्रत्यक्ष उपयोग कहेंगे—वह दोनों भिन्न नहीं हैं। 'कारणशुद्धपर्याय' में तो सभी गुणों की पर्यायें आ जाती हैं, किंतु यहाँ तो उपयोग की ही बात है। इस गाथा में तो मात्र उपयोग के ही भेद बताये हैं—प्रत्यक्ष-परोक्ष की बात इस गाथा में नहीं की गयी है।

आत्मा उपयोगमय है, उस उपयोग की पहचान यहाँ करवायी गयी है। उपयोग के दर्शन और ज्ञान दो भेद किये। उसमें से ज्ञानोपयोग के दो भेद हैं—स्वभावज्ञान और विभावज्ञान। उसमें से स्वभावज्ञान भी कारण और कार्य के भेद से दो प्रकार का है। केवलज्ञानोपयोग वह कार्यस्वभावज्ञानोपयोग है और उसके कारणरूप उपयोग वह कारणस्वभावज्ञानोपयोग है। यह दोनों ही पर्यायें हैं—तथापि पर्याय में से पर्याय आवे ऐसी बात नहीं है।

यह तो अपूर्व-अलौकिक बात है। टीकाकार मुनिराज निर्ग्रंथ भावलिंगी दिगम्बर संत थे, उन्होंने अपूर्व अमृत उँडेला है। उसे चखो तो सही!

आप्त, आगम और तत्त्व की श्रद्धा को व्यवहारसम्यग्दर्शन कहा, उसमें जीवतत्त्व के वर्णन में यह सब समाविष्ट हो जाता है।

जीव कैसा है? जीव उपयोगमय है। उपयोग का अर्थ क्या? आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती परिणाम उपयोग है। वह उपयोग तो धर्म है और जीव है धर्मी। वह उपयोग ज्ञान और दर्शन दो प्रकार का है। उसमें से यहाँ ज्ञानोपयोग के प्रकारों का वर्णन है।

ज्ञानोपयोग के दो भेद हैं। स्वभावज्ञानोपयोग एवं विभावज्ञानोपयोग। उसमें भी स्वभावज्ञानोपयोग के दो भेद हैं। एक कारणस्वभावज्ञानोपयोग, जो सभी जीवों को अनादि अनंत है; और दूसरा कार्यस्वभावज्ञानोपयोग, वह सादि अनंत है। विभावज्ञान के सात प्रकार आगे कहेंगे।

जिसको कार्यस्वभावज्ञान प्रकट होता है, उसको विभावज्ञान नहीं होता—किंतु विभावज्ञानवाले को भी कारणस्वभावज्ञान तो त्रिकाल होता है, फिर भी अज्ञानी को उसका भान नहीं है। ज्ञानी को साधकदशा में कारणस्वभावज्ञान का भान है, तथापि अभी विभावज्ञान भी है। विभावज्ञान और कारणस्वभावज्ञान दोनों एक साथ हों, परंतु विभावज्ञान और कार्यस्वभावज्ञान—यह दोनों उपयोग एक साथ नहीं हो सकते।

कारणस्वभावज्ञानोपयोग तो सभी जीवों को तीनों काल वर्तमान वर्त रहा है—वह ध्रुव है; एक आत्मा के उपयोग के सब भेद एक साथ नहीं हो सकते।

स्वभाव की तरफ का यथार्थ ज्ञान करे तो इन भेदों के ज्ञान को व्यवहारज्ञान कहा जाये।

सकलविमल केवलज्ञान उपयोग प्रकट हुआ, वह कार्यस्वभावज्ञानोपयोग है। केवलज्ञान भी एक अवस्था है—चैतन्य का अनुसरण करके होनेवाला परिणाम है। यह परिणाम पूर्व के चार ज्ञानों का अनुसरण करके नहीं होता, अपितु चैतन्य का ही अनुसरण करके होता है। उसको केवलज्ञानावरणी ने रोका था और उसका अभाव हुआ इसलिये केवलज्ञानोपयोग प्रकट हुआ—ऐसा नहीं है। आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती परिणाम वह उपयोग है—यह व्याख्या समस्त प्रकार के उपयोगों में लागू पड़ती है।

स्वभावज्ञानोपयोग कहा, वह गुण नहीं है किंतु पर्याय है। उसमें कार्यस्वभावज्ञानोपयोग वह केवलज्ञान है और वह केवलज्ञानोपयोग किसी निमित्त के अथवा पूर्व पर्याय के अनुसरण करने से नहीं हुआ, किंतु चैतन्य के अनुसरण करने से ही हुआ है। यह कार्यस्वभावज्ञानोपयोग अमूर्तिक है, इंद्रियों के अवलंबन से रहित है, प्रकट होने के बाद जैसे का तैसा ही रहता है; इसलिये अविनाशी है तथा अव्याबाध है—यह केवली भगवान के होता है।

जीवतत्त्व में इतनी गंभीरता है, इतने भाव जीवतत्त्व में भरे हैं, यदि इतनी सर्व व्याख्या लागू न पड़े तो जीवतत्त्व पूरा नहीं होता।

जो कार्यस्वभावज्ञानोपयोग कहा वह नवीन प्रकट होता है—उसका कारण कौन है? परमपारिणामिकभाव से रहनेवाला जो त्रिकालनिरुपाधिक सहजज्ञान है—वह कारणस्वभाव-ज्ञानोपयोग है। इसी उपयोग को 'स्वरूपप्रत्यक्षज्ञानोपयोग' कहेंगे।

चैतन्यस्वभाव को अनुसरण करनेवाले ज्ञान का परिणाम त्रिकाल ध्रुवरूप से रहनेवाला है, वह केवलज्ञान प्रकट होने का कारण है, परमपारिणामिकभाव में रहनेवाला है, त्रिकाल निरुपाधिक है और सहज है। ऐसा ज्ञानोपयोग वह कारणस्वभावज्ञानोपयोग है—यही केवलज्ञान का कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं है—यह बात भी साथ में आ जाती है।

केवलज्ञान तो कार्यस्वभावज्ञानोपयोग है और यह कारणस्वभावज्ञानोपयोग परमपारिणामिकभाव से स्थित त्रिकाल निरुपाधिक सहजज्ञान है। यहाँ सहजज्ञान कहा वह गुण नहीं, किंतु परिणाम है। यह दोनों स्वभावज्ञानोपयोग हैं। इसप्रकार स्वभावज्ञानोपयोग की बात हुई।

नवमी गाथा में जीवादि छह द्रव्य बतलाये उनमें जीव का छह बोल से वर्णन किया—

(१) अनादि से संसारी जीव दस प्राणों से जीते हैं, इसलिये संग्रहनय से दशप्राणों से जीवे वह जीव है—ऐसा कहा।

(२) व्यवहारनय से द्रव्यप्राणों से जीता है—वह जीव है।

(३) निश्चयनय से वह जीव जड़प्राणों से रहित अपने चैतन्यप्राण से ही जीता है।

(४) शुद्धसद्भूतव्यवहार से, आत्मा केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने से, उसको 'कार्यशुद्धजीव' कहा।

(५) जिसके अभी मतिज्ञानादि विभावगुण वर्त रहे हैं, किंतु केवलज्ञान प्रकट नहीं हुआ है—ऐसे साधक को 'अशुद्धजीव' कहा। अशुद्धसद्भूतव्यवहार से आत्मा मतिज्ञानादि का आधार है, इसलिये वह अशुद्धजीव है। इसमें साधक को लिया। जीव के वर्णन में अनादि के अज्ञानी, साधक तथा पूर्णता को प्राप्त हो गये—ऐसे सभी जीव आ जाने चाहिये, इसलिये यहाँ उनका वर्णन किया है।

(६) शुद्धनिश्चयनय से केवलज्ञानादि कार्य प्रकट होने में कारणरूप जो त्रिकाल शक्तिस्वभाव है वह 'कारणशुद्धजीव' है।

इसप्रकार छह बोल से जीव की पहचान करवाकर पश्चात् शेष पाँच द्रव्यों की संक्षेप से पहचान करवायी। अब उस दशमी गाथा में जीव के उपयोग का लक्षण कहा है। जीव उपयोगमय है, उस उपयोग का यह वर्णन चल रहा है।

जीव उपयोगमय है और वह उपयोग ज्ञान-दर्शन के भेद से दो प्रकार का है, उसमें से ज्ञानोपयोग के प्रकारों का वर्णन यहाँ चल रहा है। उपयोग के चौदह भेद इस भाँति हैं—

१. कारणस्वभावज्ञानोपयोग,

१. कार्यस्वभावज्ञानोपयोग,

७. विभावज्ञानोपयोग (४ ज्ञानोपयोग—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय;
३ अज्ञानोपयोग—कुमति, कुश्रुति, कुअवधि)

१. कारणस्वभावदर्शनोपयोग,

१. कार्यस्वभावदर्शनोपयोग,

३. विभावदर्शनोपयोग (चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन)

इन सभी में उपयोग का लक्षण लागू पड़ता है। उपयोग का अर्थ है चैतन्य-अनुवर्ती परिणाम।

इस गाथा में प्रत्यक्ष-परोक्ष की बात नहीं की है। उपयोग में प्रत्यक्ष-परोक्ष किसे कहा जाये यह स्पष्टीकरण ११-१२ गाथा में करेंगे। यहाँ सहजज्ञान उपयोग कहा है, उसे ही ११-१२ गाथा में स्वरूपप्रत्यक्ष कहेंगे।

चौदह प्रकार के उपयोग कहे वे सर्व ही चैतन्य को अनुसरण करके वर्तनेवाले परिणाम हैं। आत्मा का जो ध्रुवस्वभाव—चैतन्यस्वभाव है, उसका अनुसरण करके वर्तनेवाला परिणाम वह उपयोग है। त्रिकाल परमस्वभाव में रहनेवाली आत्मा की जो सहजज्ञान पर्याय है, वह भी चैतन्यअनुविधायी पर्याय है और कारणस्वभावदर्शनोपयोग भी ध्रुवचैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाला उपयोग है। यह दोनों त्रिकाल एकरूप निरुपाधिक हैं—इनमें उत्पाद-व्यय नहीं है। इनके अतिरिक्त जो बारह उपयोग हैं, वे उत्पाद-व्ययरूप हैं। वे भी चैतन्य का अनुसरण करके वर्तनेवाले परिणाम हैं।

यह उपयोग जीव का धर्म है और जीव धर्मी है। यहाँ 'धर्म' का अर्थ स्वभाव है, धर्म का अर्थ यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग मत समझना। चूँकि जीव ने अपने उपयोग को अपने में धारण कर रखा है इसलिये वह उपयोग जीव का धर्म है। जैसे दीपक प्रकाश को धारण किये हुए है, वैसे ही आत्मा अपने उपयोग को धारण किये हुए है। आत्मा उपयोगरहित नहीं होता। चौदहों प्रकार के उपयोग एक जीव को एक साथ नहीं होते। उनमें से कारणस्वभावज्ञानोपयोग तथा कारणस्वभावदर्शनोपयोग तो सभी जीवों के त्रिकाल हैं। शेष के बारह प्रकार में से कार्यस्वभावज्ञानोपयोग और कार्यस्वभावदर्शनोपयोग तो केवली के ही होते हैं—शेष छद्मस्थ के होते हैं।

ज्ञानोपयोग में स्वभाव और विभाव—ऐसे दो भेद पड़ते हैं। उसमें स्वभावज्ञान उपयोग दो प्रकार का है। कार्यस्वभावज्ञानोपयोग तथा कारणस्वभावज्ञानोपयोग।

यह त्रिकाली द्रव्य-गुण की बात नहीं है, किंतु चैतन्य के उपयोगरूप परिणाम की बात है। यह दोनों उपयोग अमूर्त, अव्याबाध, अतीन्द्रिय एवं अविनाशी हैं। जीव के स्वरूप की यह बात अन्यत्र कहीं है ही नहीं। सर्वज्ञकथित यह बात जाने बिना सच्ची श्रद्धा हो सकती नहीं। ऐसे जीव को जाने बिना जीव का ज्ञान पूरा होता नहीं। यहाँ तो तत्त्वों की श्रद्धा के लिये यह वर्णन है। सर्वज्ञ भगवान, उनकी वाणी, और उसमें कहे गये तत्त्वों की श्रद्धा वह व्यवहारश्रद्धा है। उन तत्त्वों का वर्णन चल रहा है।

जीव के उपयोग का जो वर्णन चल रहा है, वह उपयोग भी जीव का तत्त्व है—भाव है।

(१) जीव उपयोगमय है।

(२) वह उपयोग चैतन्य का अनुसरण करनेवाला परिणाम है।

(३) उस उपयोग के ज्ञान और दर्शन—ऐसे दो प्रकार हैं।

(४) ज्ञानोपयोग के स्वभाव और विभाव—ऐसे दो भेद हैं।

(५) स्वभावज्ञानोपयोग भी कारण और कार्य के भेद से दो प्रकार का है। कारणस्वभावज्ञानोपयोग त्रिकाल एकरूप सहजज्ञान है। यहाँ ज्ञान के उपयोग की बात है। आगे 'कारणशुद्धपर्याय' का वर्णन आयेगा उसमें सभी गुणों की ध्रुवपर्याय ले लेंगे।

कार्यस्वभावज्ञानोपयोग अर्थात् केवलज्ञान। यह ज्ञानोपयोग एक-एक समय का है तथा चैतन्यस्वभाव का अनुसरण करके वर्तता है। किसी निमित्त, राग अथवा पूर्वपर्याय का अनुसरण करके वह नहीं वर्तता। केवलज्ञानोपयोग, केवलज्ञान पर्याय का भी अनुसरण नहीं करता, अपितु त्रिकालज्ञानस्वभाव और त्रिकाली सहज कारणज्ञानोपयोग का ही अनुसरण करके सादि-अनंत एक-एक समय करके वर्त रहा है।

जो कार्यउपयोग है, वह कारणउपयोग का ही अनुसरण करके वर्तनेवाला है। त्रिकाली चैतन्यस्वभाव और उसका ध्रुवरूप कारणउपयोग, उनका अनुसरण करके केवलज्ञानरूपी कार्यस्वभावज्ञानोपयोग प्रकट हुआ है। कार्य वर्तमान है और उसका कारण भी वर्तमान वर्तता ध्रुव है। एक सामान्य ध्रुवउपयोग और उसका ध्रुव वर्तमान कारणउपयोग वह विशेष उपयोग; इन दोनों का अनुसरण करके कार्यस्वभावज्ञानोपयोग प्रकट होता है और सादि-अनंत उन्हीं के आधार से टिकता है।

जीव तत्त्व है, चैतन्यगुण उसका तत्त्व है, उसका ध्रुवकारणज्ञानोपयोग भी उसका तत्त्व है; उसमें से प्रकट हुआ कार्यस्वभावज्ञानोपयोग भी उसका तत्त्व है। जब इतना सब स्वीकार करे तब आत्मा को स्वीकार किया—ऐसा कहा जाये।

अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को इसप्रकार जो जानता है, वह अपने ज्ञानस्वभाव की तरफ झुके बिना रहता नहीं। चैतन्य का ज्ञान और उस ज्ञान का सहजरूप उपयोग यह दोनों त्रिकाल हैं। इनका अनुसरण करके केवलज्ञानरूपी कार्य प्रकट होता है।

कार्य प्रकट हो उसका कारण कौन?—उसका कारण त्रिकाल निरुपाधिक परमपारिणामिकभाव से रहनेवाला ऐसा सहजज्ञान है। कारणस्वभावज्ञानोपयोग को किसी

उदय, उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षायिकभाव की अपेक्षा नहीं है, वह तो त्रिकाल परमपारिणामिकभाव से स्थित है। ऐसा एकरूप सहजज्ञान वह कारणस्वभावज्ञानोपयोग है और वही केवलज्ञान का कारण है।

देखो, पद्मप्रभमुनिराज ने तो टीका में स्पष्ट वर्णन किया है। अपनी समझ में नहीं आता है इसलिये मुनिराज के ऊपर आरोप लगाना कि 'मुनिराज ने टीका को कठिन कर दिया है' यह तो अपात्रता है। कारण-कार्य को साथ-साथ रखकर अद्‌भुत वर्णन किया है।

त्रिकाल परमपारिणामिकभाव में स्थित ऐसा कारणस्वभावज्ञानोपयोग है, वही केवलज्ञान का कारण है। ऐसे कारण की प्रतीति करने पर केवलज्ञान की शंका नहीं रहती। केवलज्ञानपर्याय काल के कारण नहीं वर्तती, किंतु कारणस्वभावज्ञानोपयोग के आश्रय से ही वर्तती है। परद्रव्य की तो बात ही नहीं, किंतु उसकी पूर्वपर्याय के आश्रय से भी नवीन पर्याय नहीं होती। वर्तमान वर्तता हुआ जो ध्रुवकारणस्वभावज्ञानोपयोग है, उसी के आश्रय से वह कार्यस्वभावज्ञान प्रकट होता है।

कारणस्वभावज्ञानोपयोग एक समय की पर्याय है, परंतु वह जैसे का तैसा त्रिकाल निरुपाधिक है, निगोद से लेकर सिद्ध तक सभी जीवों में वह उपयोग कर्म की अपेक्षा से रहित एकरूप वैसे का वैसा ही है। जीवतत्त्व का ऐसा स्वभाव है। ऐसे जीव को जाने बिना दूसरे अजीवादि तत्त्वों का वास्तविक स्वरूप जानने में नहीं आ सकता।

एक समय में प्रत्यक्षरूप से तीन काल तीन लोक का ज्ञान करे ऐसा जो कार्यस्वभाव ज्ञान है, उसके कारणरूप उपयोग जो सहजज्ञान अथवा कारणस्वभावज्ञानोपयोग है, उसको ही अग्रिम गाथाओं में त्रिकाल स्वरूपप्रत्यक्ष उपयोग कहेंगे। उसी में तीनों काल स्वरूप को प्रत्यक्ष करवाने की शक्ति है, उसमें कभी परोक्षपना नहीं है—अधूरा जाने या पूरा जाने ऐसी अपेक्षा उसमें नहीं है। एक समय में ध्रुव कारणरूप स्वरूपप्रत्यक्ष उपयोग है। मतिज्ञानादि तो पर की अपेक्षावाली हीनाधिक पर्यायें हैं। एकरूप वर्तमान ध्रुव उपयोग के बिना ज्ञानगुण परिपूर्ण सिद्ध नहीं होता और उसके बिना आत्मा सिद्ध नहीं होता।

अहो! वन में आत्मानंद में लीन रहनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव को इस टीका का विकल्प उठने पर टीका की रचना हुई। देखो तो सही! स्वभावकारण उपयोग और उसके

आधार से स्वभावकार्य उपयोग! यह बात समझने में विशेष पुरुषार्थ चाहिए। यहाँ कारणस्वभावज्ञानोपयोग और कार्यस्वभावज्ञानोपयोग का वर्णन किया।

इसप्रकार स्वभावज्ञानोपयोग का वर्णन पूर्ण हुआ।

अब विभाव ज्ञानोपयोग का वर्णन करते हैं। वह विभावरूप ज्ञान तीन प्रकार का है—कुमति, कुश्रुत और विभंग। यह तीनों अज्ञानी के होते हैं। इनका उपयोग भी यद्यपि चैतन्य का ही अनुसरण करके होता है; किंतु इनकी प्रतीति नहीं होने से पर के कारण उपयोग होता है ऐसा अज्ञानी मानता है। इसलिये उसका उपयोग मात्र विभावरूप है, जिसके तीन भेद हैं—कुमति, कुश्रुत और कुअवधि। जो त्रिकालस्वभाव का अवलंबन न लेकर पर के अवलंबन में उपयोग को जोड़ता है, उस ज्ञान को कुज्ञान कहते हैं। अज्ञानी द्रव्यलिंगी दिगम्बर जैन साधु हो तथा ग्यारह अंग का पाठी हो; तथापि मेरा ज्ञान पर के आश्रय से अथवा विकल्प के आश्रय से हुआ है—ऐसा मानने के कारण उसका समस्त ज्ञान कुज्ञान है। भले ही यहाँ बैठे-बैठे स्वर्ग-नरक को जाने फिर भी वह सब कुअवधिज्ञान है—मिथ्याज्ञान है।

इस उपयोग के भेदरूप ज्ञान के भेद अगले दो सूत्रों (११-१२) द्वारा जानना। उपयोग के दो भेदों में से ज्ञान उपयोग के भेदों का यह वर्णन चल रहा है। ज्ञानोपयोग के कुल नौ भेद हैं, उसमें से इस गाथा में पाँच प्रकार आ गये। (१) कारणस्वभावज्ञानोपयोग (२) कार्यस्वभाव-ज्ञानोपयोग (३) कुमति (४) कुश्रुत (५) कुअवधि। इनमें से अंत के तीन सर्वथा विभावरूप उपयोग हैं। शेष के सम्यक्मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यय इन चार प्रकार का वर्णन अग्रिम गाथा में आयेगा।

# द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

## ( ३ ) मिश्र गुणस्थान

अनादि मिथ्यादृष्टि को इस तीसरे गुणस्थान की पर्याय सीधी नहीं आती, परंतु चौथा गुणस्थान प्राप्त करने के बाद जीव वहाँ से गिरता है—तब ही जीव तीसरे गुणस्थान में आता है, उसका ज्ञान कराते हैं। इस मिश्र गुणस्थान अवस्थारूप जीव स्वयं परिणमित हुआ है—ऐसा जानना यह अशुद्धनय है।

सर्वज्ञ द्वारा कथित तत्त्व भी माने, तथा अन्य मतालंबियों द्वारा प्ररूपित तत्त्वों का भी श्रद्धान करे—किसी के द्वारा कहा हुआ स्त्री-मुक्ति माने, वस्त्रसहित मुक्ति माने, तथा केवली को कवलाहार माने। ऐसे विपरीत-अविपरीत दोनों तत्त्वों का श्रद्धान करे। जैसे दही और गुड़ मिले हुए हों—वैसे पदार्थों का मिश्र श्रद्धान करता है; यह मिश्र गुणस्थान की दशा है।

**शंका**—अपने को किसी का अनादर नहीं करना, सब देवों का विनय करना, अपने को तो देव से मतलब है। और सर्वज्ञ भी सच्चे और अन्य विष्णु आदि देव भी सच्चे, सबमें से कोई न कोई देव सच्चा ही निकलेगा; इसलिये सब देवों का विनय करना, वह विनय-मिथ्यादृष्टि तथा संशयमिथ्यादृष्टि है। तब उनमें और सम्यक्मिथ्यादृष्टि मिश्र गुणस्थान की अवस्था में अंतर (भेद) क्या है? अर्थात् वैनयिक अथवा सांशयिक मिथ्यादृष्टि जीव में और मिश्र गुणस्थान की अवस्थावाले जीव में क्या अंतर है?

**समाधान**—सम्यग्दर्शन प्राप्त कर पीछे (नीचे की ओर) गिरने से जीव की दशा, यह मिश्र गुणस्थान है। यहाँ रहते हुए जीव को दोनों प्रकार की श्रद्धा होती है। परंतु वैनयिक मिथ्यादृष्टि अथवा सांशयिक मिथ्यादृष्टि जीव को कुछ निश्चय नहीं होता। सभी देव सच्चे ऐसा मानकर सब देवों की भक्ति करते हैं, और इसमें सत्यार्थ देव की भी भक्ति आ जायेगी और पुण्य होगा ऐसा वह मानते हैं; इससे वे मिथ्यादृष्टि ही हैं।

वैनयिक मिथ्यादृष्टिवाले एक दृष्टांत देते हैं। एक स्त्री के पति को किसी ने विद्या से बैल

बना दिया, इससे वह स्त्री बैल की सेवा करती और चराती। एक समय ऊपर से (आकाशमार्ग से) जाती हुई विद्याधरी को बैल को देखने से दया आयी। इसलिये उसने अपने पति विद्याधर से विनती की कि इसको मनुष्य बना दो, तब उसने कहा—इस बैल को संजीवनी बेल खिलाने में आये तो यह मनुष्य हो जायेगा। लेकिन वह स्त्री संजीवनी बेल को पहिचानती नहीं थी, इससे उसने माना कि सभी बेले खिलाने से उसमें वह संजीवनी बेल भी आ जायेगी और मेरा पति अच्छा हो जायेगा। ऐसा मानकर सभी प्रकार की बेलें खिलाने लगी। उनमें संजीवनी बेल आने से वह बैल मनुष्य हो गया—ऐसा दृष्टांत देते हैं। किंतु यह दृष्टांत ही असत्य है। उनमें कोई विषैली बेल आ जाए तो बैल मर भी जाये। इसलिये उस वैनयिक मिथ्यादृष्टि का दृष्टांत असत्य है। इसलिये सर्व में से किसी एक का यथार्थ निर्णय करना चाहिये।

क्रमबद्ध की बात आने से अज्ञानी संशय में पड़ जाता है कि यदि प्रत्येक पदार्थ क्रमबद्ध परिणमता हो तो उसमें पुरुषार्थ कहाँ आया? कुछ करने का तो रहा नहीं। तथा यदि वस्तु का स्वरूप क्रमबद्ध न मानें तो सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक के जाननेवाले हैं, वह सर्वज्ञावस्था नष्ट हो जाती है—ऐसे माननेवाले संशयमिथ्यादृष्टि हैं। तथा कोई दोनों को सत्य माने—सर्वज्ञ भी माने, और फिर पदार्थों की पर्यायें उल्टी-सीधी भी की जा सकती हैं—ऐसा दोनों माने। इन दोनों में से कोई सत्य होगा; अपने को वाद-विवाद किसलिये (क्यों) करना? दोनों की मान्यता सत्य होगी, वह वैनयिकमिथ्यादृष्टि है। वे दोनों प्रथमगुणस्थानवती मिथ्यादृष्टि ही हैं।

## (४) अविरतसम्यक्त्व गुणस्थान

दर्शनमोह हटा—इससे जीव को सम्यग्दर्शन प्रगटता है, ऐसा नहीं है। यह जीव की अवस्था है। जीव स्वयं ही स्वयं की योग्यता से ही परिणमता है। स्वाभाविक अनंत ज्ञानादि गुणों का आधारभूत जो स्वयं परमात्मद्रव्य है-वही उपादेय है। निज परमात्मद्रव्य आधार है और अनंत गुण आधेय है—द्रव्य के आश्रय से रहे हुए हैं। मैं अनंत गुणों का आधार ज्ञातादृष्टा ही हूँ, वही आश्रय करने योग्य है, उपादेय है। तथा इंद्रियों का काल्पनिक सुख, शुभाशुभ परिणाम, व्यवहाररत्नत्रय; यह परद्रव्य हैं, हेय हैं, आश्रय करनेयोग्य नहीं हैं, ऐसा सर्वज्ञदेव द्वारा कथित निश्चय-व्यवहार को साध्य-साधक माने। अर्थात् त्रिकालस्वरूप को साध्य माने और वर्तमान स्वसन्मुख हुए मोक्षमार्ग की पर्याय को साधक माने। ऐसी जो यथार्थ मान्यता होना-वह सम्यग्दर्शन है।

इस गुणस्थानवाले को यथार्थ देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा होती है, अंतरंग निज शुद्धात्म द्रव्य को वह उपादेय मानता है। तथा जिसको भूमिरेखा समान जो अप्रत्याख्यानावरण कषाय होती है, उसकी उसको अंतर (चैतन्य) में आत्मनिंदा बरतती है। यह चौथे गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जीव का स्वरूप है। जैसे कोतवाल ने किसी चोर को पकड़ा, उस चोर को अंतरंग में पश्चाताप ग्लानि होती है; वैसे इस चौथे गुणस्थानवर्ती जीव को स्वयं के पुरुषार्थ की कमजोरी से जो कषाय परिणति प्रवर्तती है, उसकी उसको अंतरंग में निंदा होती है, खेद होता है।

इस चौथे गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि को भूमिका अनुसार स्वयं की कमजोरी से व्यापार का, शादी-विवाह करने का, स्त्री का, लड़ाई का राग होता है; इंद्रियसुख की ओर झुकाव होता है; परंतु उसकी उसको निंदा होती है, और अंतरंग में मैं शुद्ध चिदानंदस्वरूप हूँ—यह दृष्टि एकसमय भी छूटती नहीं है।

इस चौथे गुणस्थान की अवस्था यह अशुद्धनय का विषय है, तथा उस समय अखंड चिदानंद आत्मा की दृष्टि करना यह शुद्धनय का विषय है। चौथे गुणस्थान में इस शुद्धनय के विषयभूत ज्ञातास्वभाव की दृष्टि उपादेय बुद्धि है। पहिले के तीन गुणस्थानों में भी ऐसा नित्यस्वरूप तो मौजूद ही था, किंतु वहाँ उसकी दृष्टि नहीं थी। जब चौथे गुणस्थान में स्वयं के त्रिकाली परमात्मद्रव्य की दृष्टि, रुचि, उपादेयबुद्धि हुई है; इसलिये अंशरूप से पर्याय में भी शुद्धता का अंश प्रगट हुआ है।

यहाँ आत्मा की पर्याय के भेदों का ज्ञान कराते हैं। शुद्धनय से सब आत्मायें सिद्ध समान शुद्ध हैं। इस अपेक्षा से तो सभी आत्मायें समान हैं। किंतु पर्याय में मिथ्यात्व से लगाकर चौदहवें अयोगी गुणस्थान तक की पर्यायें होती हैं, यह अशुद्धनय का विषय है। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन है। उस भूमिका में सर्वज्ञ भगवान ने जैसा कहा वैसा स्वयं की शुद्धात्मा का ज्ञान होता है। लेकिन वहाँ अभी प्रत्याख्यानावरण कषाय है, इसलिये व्रत नहीं है। ऐसा चौथा गुणस्थान है। देखिये, पर्याय आदरणीय नहीं है, किंतु ज्ञान में जाननेयोग्य है। आदरणीय तो शुद्धनय के विषयरूप शुद्ध आत्मा है।

## ( ५ ) देशविरत गुणस्थान

अंतर (चैतन्य) में चिदानंद स्वभाव का ज्ञान होने के बाद आत्मा के विशेष अनुभव में

एकदेश राग दूर होकर वीतराग भाव होने से अप्रत्याख्यानावरण कषाय का अभाव होकर पाँचवाँ गुणस्थान प्रगट होता है।

यहाँ पाँच अणुव्रत तथा प्रतिमा वगैरह होती हैं। अंतर में सहजस्वभाव का अनुभव बढ़ गया है, और बाह्य में हिंसादि छूट गये हैं। पाँचवें गुणस्थान में व्रतप्रतिमा होती है, उन ग्यारह प्रतिमाओं में क्रमशः शुद्धता का अंश बढ़ता जाता है। जैसे-जैसे अंतर में आनंद का स्वाद बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे प्रतिमा बढ़ती जाती है, और उस-उस प्रकार का राग और राग के निमित्त छूटते जाते हैं।

सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावक के पाँचवें गुणस्थान की दशा कैसी होती है? वह चर्चा यहाँ की। इससे विरुद्ध जो मानता हो, वह आगम अथवा गुरु सच्चा नहीं है। वह कुगुरु और कुशास्त्र है। पाँचवें गुणस्थानवाले श्रावक की कैसी अवस्था हो? उसकी कैसी श्रद्धा हो? उसका भी ज्ञान न हो—और अपने को सीधा मुनिपना मान बैठे—उसको तो अभी सत्य श्रद्धा का भी पता नहीं है। चौथे गुणस्थानवाले को भी सत्यार्थ देव-शास्त्र-गुरु की कैसी श्रद्धा होती है, उनके प्रति कितना हर्ष और उत्साह होता है; उसका तो जिसको ज्ञान नहीं है, और कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का पोषण कर मूढ़ता सेवन कर रहा है; ऐसे जीव को श्रावकपना अथवा मुनिपना होता ही नहीं है। उसको यह मुनि अवस्था और श्रावक अवस्था कैसी होती है—इसका भी ज्ञान नहीं है।

देखो, यह गुणस्थान तो अभी अशुद्धनय का विषय है, उसका भी जिसको ज्ञान नहीं है वह शुद्धनय के विषयभूत द्रव्य आदरणीय है, यह बात कहाँ से जाने? जिसको देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान हुआ है, उनको कहे हुये शुद्धात्मा वगैरह तत्त्वों का ज्ञान हुआ है। ऐसे जीव को सम्यग्दर्शन की चौथी भूमिका हो, और बाद में पाँचवाँ गुणस्थान होता है।

## ( ६ ) प्रमतसंयत गुणस्थान

इसके पश्चात् अंतर (चैतन्य) स्वभाव में विशेषरूप से लीन होने से निर्विकल्प अवस्था में पहिले सातवाँ गुणस्थान होता है और बाद में विकल्प उठने से छठवाँ गुणस्थान होता है। यह सनातन नियम है कि मुनि को पहिले सातवाँ गुणस्थान प्रगट होता है और बाद में ही छठवाँ गुणस्थान होता है। लेकिन यहाँ क्रमशः कथन होने से पहिले छठवें गुणस्थान का कथन किया है।

देखो, अंतर में स्वभाव का ज्ञान होने के पश्चात् अत्यधिक शुद्धता प्रगट होने से छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलती मुनिदशा प्रगट होती है। मिथ्यादृष्टि को द्रव्यलिंगी मुनि कहा जाता है, लेकिन उसको छठवाँ गुणस्थान नहीं होता। छठवें गुणस्थान में तीन कषाय के अभावरूप वीतराग भावसहित देह की दिगम्बर अवस्था ही होती है। वस्त्रसहित मुनि दशा कदापि नहीं होती है। ऐसे छठवें गुणस्थानवाले जीव की दशा है। इससे विरुद्ध जो कहता हो वह कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र है।

छठवें गुणस्थानवाले को अंतर (चैतन्य) में अधिक वीतराग भाव हो गया है, और बाह्य में वस्त्रादि सर्वपरिग्रह छूट गया है। जहाँ-जहाँ मुनि हों वहाँ-वहाँ मुनिदशा ऐसी ही होती है। इससे विरुद्ध जो मुनिदशा माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। स्वयं के शुद्ध आत्मा के ज्ञानपूर्वक सुखामृत का अनुभव बढ़ जाने से तीन प्रकार की कषायों का अभाव जिनको हो गया है अर्थात् अंतर में रागादि की उपाधि छूट गयी है, और बाह्य में हिंसादि के त्यागरूप महाव्रत होते हैं; ऐसे मुनिवरों को छठवाँ गुणस्थान होता है। इस छठवें गुणस्थान में कोई अशुभ स्वप्न तथा कोई अल्पप्रमादभाव आ जाता है। मुनि को अधिक निद्रा नहीं आती, बहुत थोड़े समय की थोड़ी नींद होती है। अंदर का जागृतिभाव विशेष बढ़ गया है। छठवें प्रमत्तसंयत गुणस्थान की ऐसी अवस्था है।

देखो, सबसे पहिले तो सत्यार्थ देव-गुरु-शास्त्र के प्रति उल्लास-भाव आना चाहिये। जो जीव कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का पोषण (सेवन) करता है, और उसको सत्यार्थ देव-गुरु-शास्त्र मिलें; उनके प्रति कुदेवादि की अपेक्षा विशेष प्रीति-उल्लास-आदर और भी भक्ति न आये और उसका कुदेवादिक का सेवन न छूटे तो वह कुलटा स्त्री जैसा गृहीत मिथ्यादृष्टि है। धर्मीजीव सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को पहिचानकर तन-मन-धन सर्व प्रकार से उनका बहुमान करता है, और कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का सेवन नहीं करता है।

छठवें गुणस्थानवाले मुनि को कभी वस्त्र नहीं होता है। अंतर की चारित्रदशा में, बाह्य में वैसा ही निमित्त होता है। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' ऐसा कहा है—उसमें यह बात भी समाविष्ट हो जाती है। यह तो वीतरागी मार्ग है। मुनिदशा में छठवें गुणस्थान में जलरेखा जैसी अति सूक्ष्मकषाय होती है।

## ( ७ ) अप्रमत्तसंयत गुणस्थान

छठवें गुणस्थानवाले को पहिले सातवाँ गुणस्थान होता है। चौथे अथवा पाँचवें गुणस्थान के पश्चात् पहिले सातवाँ गुणस्थान फिर छठवाँ गुणस्थान आता है। इस सातवें गुणस्थान में संज्वलन कषाय भी विशेष मंद होती है। इस गुणस्थान में निर्विकल्प अनुभवदशा ही होती है, इसमें प्रमादभाव नहीं होता है। संज्वलन के तीव्र उदय से छठवाँ गुणस्थान और संज्वलन के मंद उदय से सातवाँ गुणस्थान होता है—ऐसा गोम्मटसार में कथन आता है, वह तो निमित्त से कथन किया है। लेकिन जीव की अवस्था कुछ कर्म के कारण से नहीं होती, जीव स्वयं ही स्वयं की योग्यता से उन-उन गुणस्थानों में प्रवर्तता है।

देखो, इस गाथा में चौदह गुणस्थान तथा मार्गणास्थान वगैरह को अशुद्धनय का विषय कहकर कथन किया है अर्थात् वह सब जीव के भावों का कथन है। यह कथन करके श्रीधवल, जयधवल तथा महाधवल के बीजाक्षर (बीजमंत्र) रख दिये हैं, तथा 'शुद्धनय से समस्त जीव शुद्ध हैं' ऐसा शुद्धनय का वर्णन करके समयसार वगैरह अध्यात्म के बीजाक्षर रख दिये हैं।

## ( ८ ) अपूर्वकरण गुणस्थान

सातवें गुणस्थान के पश्चात् विशेष निर्विकल्पता दृढ़ होने से जीव श्रेणी माँडता है तब आठवाँ गुणस्थान होता है। श्रेणी दो प्रकार की हैं—उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी। क्षपक श्रेणी वाला तो आगे बढ़कर केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। आठवें गुणस्थान में संज्वलन कषाय अत्यंत मन्द हो गयी है। सातवें गुणस्थान से लेकर ऊपर के आगे के सभी गुणस्थानों में निर्विकल्प ध्यान में एकाग्रता ही होती है। छठवें-सातवें गुणस्थान में कोई मुनि हजारों वर्ष झूले, लेकिन इसके बाद आठ से बारहवें गुणस्थान की स्थिति तो अल्प है, अंतर्मुहूर्त ही है।

## ( ९ ) अनिवृत्तिकरण गुणस्थान

आठवें की अपेक्षा अधिक एकाग्रता होने से नववाँ गुणस्थान प्रगट होता है। देखे हुये, सुने हुये अथवा अनुभव किये हुये भोगों की वाँछारहित, संकल्प-विकल्परहित, स्वयं के शुद्ध परमात्म ध्यान में विशेष निश्चलता होने से नववाँ गुणस्थान होता है। इस गुणस्थान में रहनेवाले जीव पृथक्-पृथक् वर्ण तथा संस्थानादि वाले होने पर भी उनके परिणामों में समानता है।

## ( १० ) सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान

यहाँ सूक्ष्म लोभ होता है, वह भी अबुद्धिपूर्वक होता है। सातवाँ तथा उसके आगे के गुणस्थानों में बुद्धिपूर्वक राग नहीं होता है। कषाय अत्यंत सूक्ष्म हो गयी है। इससे यहाँ परमात्मतत्त्व को भी 'सूक्ष्म' ऐसा विशेषण देकर कहा है कि सूक्ष्म परमात्मतत्त्व के ध्यान से क्लिष्ट लोभकषाय का नाश किया है—ऐसा दसवाँ गुणस्थान है।

## ( ११ ) उपशांतमोह गुणस्थान

आत्मा के ज्ञान के बल से उपशम पर्याय (दशा) उत्पन्न होती है। वीतराग अवस्था होने के पूर्व किसी जीव को उपशम श्रेणी होती है। वह जीव नीचे (वापिस) गिरता है। उसका कारण कर्म नहीं है, किंतु स्वयं की पामरता है। कर्म के कारण से गिरता है, यह निमित्त का कथन है। जो उपशांत दशा करता है, वह ग्यारहवें गुणस्थानवाला जीव है—ऐसा ज्ञान करना; लेकिन वह पर्याय है, इसलिये आदरणीय नहीं है। शुद्ध आत्मा ही आदरणीय है।

## ( १२ ) क्षीणमोह गुणस्थान

ग्यारहवें में पुरुषार्थ मंद है, बारहवें में तीव्र है। आत्मा के श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक स्वरूप में स्थिरता हुई, शुद्धता के अंश बढ़ते जाते हैं—उसको श्रेणी कहते हैं। वह आठवें गुणस्थान से प्रारंभ होती है। उपशम श्रेणी की अपेक्षा क्षपक श्रेणी में उग्र पुरुषार्थ है। बारहवें गुणस्थान में शुद्ध आत्मा की भावना के बल पर कषायें नष्ट की हैं और वीतरागता प्रगट की है। और जीव ऐसा पुरुषार्थ करे तब कर्म नष्ट हुए बिना नहीं रहते। यह भूमिका भी अशुद्धनय का विषय है। वह पर्याय है—जानने जैसी है; लेकिन आदरणीय नहीं है।

## ( १३ ) सयोगी केवलीजिन गुणस्थान

आठवें से बारहवें गुणस्थान तक का समय अंतर्मुहूर्त है। और तेरहवें गुणस्थान की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति आठ वर्ष अंतर्मुहूर्त कम एक कोटिपूर्व की होती है। वीतरागता होने के बाद शुक्लध्यान के दूसरे पाये में केवलज्ञान होता है। क्षपक श्रेणी में शुक्लध्यान का पहिला पाया आठवें से दसवें गुणस्थान तक है। दूसरा पाया बारहवें से शुरु होता है। यहाँ विशेष प्रकार से एकत्ववितर्क विचार नाम ध्यान में स्थिर होने से केवलज्ञान होता है (एकत्ववितर्कविचार श्रुतज्ञान है)। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणी, अंतराय ऐसे तीन कर्म नाश

होने से बादलों में से बाहर निकलते सूर्य की तरह संपूर्णरूप से निर्मल केवलज्ञान प्रगट होता है और लोक-अलोक को जानता है अथवा लोक-अलोक उस ज्ञान में प्रकाशित होते हैं।

यहाँ बादल का दृष्टांत दिया है वह आंशिक लागू पड़ता है। दृष्टांत सब प्रकार से लागू नहीं होता। यहाँ बादलों के पीछे सूर्य प्रगट जाज्वल्यमान है; वैसे आत्मा की पर्याय में केवलज्ञान प्रगट जाज्वल्यमान है और कर्म आड़े आ गये हैं, ऐसा न समझना। सूर्य की तरह आत्मा में केवलज्ञान प्रगटरूप नहीं है। कोई केवलज्ञान को सत्तारूप मानते हैं और कहते हैं कि केवलज्ञान अंदर में प्रगट है, कर्म के बादल आड़े आये हुए हैं; वे कर्मरूपी बादल हट जाने से केवलज्ञान प्रगट होता है। ऐसा जो मानते हैं, वह बात ठीक नहीं है। केवलज्ञान अंदर शक्तिरूप से है और व्यक्तरूप से हीनदशा में है, और उनमें कर्म निमित्तरूप हैं।

जो शक्तिस्वभाव है उसमें एकाग्रता होने से केवलज्ञान व्यक्त (प्रगट) होता है और कर्म हट जाते हैं। इसलिये बादलों का दृष्टांत दिया है। जैसे लैंडी पीपर में चौसठ पहरी तिखास (चरपरापना) व्यक्तरूप से नहीं है किंतु शक्तिरूप से है, घिसने से शक्तिरूप की तिखास व्यक्त होती है; वैसे आत्मा में केवलज्ञान शक्तिरूप से है, उस अखंड शुद्धात्मा का ज्ञान करके उसमें तल्लीनता करने से वह प्रगट होता है। मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १९४ में कहा है कि 'कोई ऐसा मानता है कि आत्मा के प्रदेशों में तो केवलज्ञान ही है, ऊपर आवरण होने से प्रगट नहीं होता—सो यह भ्रम है'—जो केवलज्ञान वज्रपटलादि आड़े होने पर भी वस्तु को जानता है, वह कर्म आड़े आने से किसलिये अटके?

अज्ञानी जीव कर्म तथा निमित्त को देखते हैं—और कर्म बाधक हैं। इसलिये केवलज्ञान नहीं होता ऐसा कहते हैं—वे स्वभाव को नहीं देखते। स्वभाव को देखनेवाले, उपादान को देखनेवाले निर्णय करते हैं कि केवलज्ञान स्वयं के पुरुषार्थ से प्रगट होता है, और विपरीत मान्यता के काल में प्रगट नहीं होता। लेकिन जिस समय प्रगट होना है उसी समय प्रगट होता है। ऐसे केवलज्ञान की पर्याय का निर्णय करनेवाले की दृष्टि स्वयं के अखंडस्वभाव पर है।

केवलज्ञान शक्तिरूप से है वह व्यक्त होता है, इसलिये केवलज्ञान अनादि से प्रगट है, ऐसा नहीं है। इसीप्रकार केवलज्ञान गुण नहीं है, पर्याय है। उस केवलज्ञान में 'मैं पृथक् हूँ और अनंत दूसरे पदार्थ पर हैं'—ऐसा भासता है। तो भी वहाँ विकल्प नहीं है, जैसा है वैसा प्रतिभासित है। तेरहवें गुणस्थान में अभी जीव की संपूर्ण शुद्धदशा प्रगट नहीं हुई है। इसलिये

तेरहवाँ गुणस्थान अशुद्धनय का विषय है। केवलज्ञान द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है, पर्याय के आश्रय से प्रगट नहीं होता। इसलिये केवलज्ञान पर्याय जाननेयोग्य है और शुद्धद्रव्य आदरणीय है।

## ( १४ ) अयोगी केवलीजिन गुणस्थान

तेरहवें गुणस्थान में कंपन होता है, वह चौदहवें में नहीं होता। मन-वचन-काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों का कंपन होता है, और इसलिये कर्मों का आगमन होता है। उस कंपनरहित दशा को चौदहवाँ अयोगी गुणस्थान कहते हैं। वह भी पर्याय है, इसलिये आदरणीय नहीं है; त्रिकालस्वभाव ही अवलंबन करनेयोग्य है।

यह जीव का अधिकार है। जीव अनादि है, उसकी पर्याय में चौदह प्रकार के गुणस्थानों का भेद होता है, वह स्वतंत्र है। प्रत्येक पर्याय में स्वतंत्रता है। प्रथम गुणस्थान की पर्याय भी सत् है, उत्पाद सत् है, व्यय भी सत् है। ऐसी पर्याय की स्वतंत्रता बताती है। लेकिन वह पर्याय होने से अशुद्धनय का विषय है, इसलिये आदरणीय नहीं है, लेकिन जानने जैसी है; शुद्धनय एक ही आदरणीय है।

इसप्रकार चौदह गुणस्थानों की बात समाप्त हुई। [क्रमशः]

---

## आध्यात्मिक प्रवचनों का विशेष आयोजन

**जयपुर :** श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के वार्षिक कार्यक्रम के अन्तर्गत दिनांक १५-४-७८ से २४-४-७८ तक पंडित श्री शशिभाई, भावनगर एवं दिनांक २४-४-७८ से १५ दिवस के लिये श्री युगलकिशोरजी 'युगल', कोटा तथा पंडित श्री नरेन्द्रकुमारजी शास्त्री 'भिसीकर', सोलापुर को आमंत्रित किया गया है। श्री शशिभाई एवं श्री नरेन्द्रकुमारजी की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है, श्री युगलजी का भी आश्वासन प्राप्त हो गया है कि उनका स्वास्थ ठीक रहा तो अवश्य पधारेंगे। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तो यहाँ हैं ही।

बाहर से पधारनेवाले बंधुओं के लिये निःशुल्क आवास एवं सशुल्क भोजन की व्यवस्था है। इसके लिये वे हमें तत्काल सूचित करें ताकि समुचित व्यवस्था की जा सके। *—प्रबन्धक*

# समाचार दर्शन

## मद्रास पंचकल्याणक सानंद संपन्न

## समयसार गाथा १७, १८ एवं ३१ पर पूज्य स्वामीजी के मार्मिक प्रवचन

**मद्रास** – दिनांक ३-३-७८ से ११-३-७८ तक श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव एक भव्य विशाल आयोजन के साथ सानंद संपन्न हुआ। ऐसा महान व सफल आयोजन मद्रास शहर में अभूतपूर्व कहा जाये तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं है। दर्शक व कार्यकर्ता स्वप्न में भी ऐसी कल्पना नहीं करते थे कि इतनी दूर-दूर से इतनी भारी संख्या में धर्मप्रेमी भाई एकत्रित होंगे। ऐसा कोई प्रान्त नहीं बचा जहाँ से लोग न आये हों। दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, आगरा, मेरठ, सहारनपुर, भोपाल, विदिशा, गुना, इंदौर, उज्जैन, बड़नगर, खंडवा, अशोकनगर, सनावद, लोहारदा, जयपुर, उदयपुर, कोटा, कुचामन, अहमदाबाद, भावनगर, सोनगढ़, फतेपुर तथा सारे दक्षिण भारत से हजारों लोग एकत्रित हुए। पूज्य बहिनश्री चंपाबेन एवं श्री शांताबेन भी इस मांगलिक अवसर पर पधारी थीं।

कार्यक्रम की सफलता का पूरा श्रेय पूज्य श्री कानजीस्वामी को ही जाता है, जिनके प्रवचनों के आकर्षण से सुदूरवर्ती प्रांतों से हजारों आत्मार्थी आये थे। प्रतिष्ठाचार्य पंडित धन्नालालजी ग्वालियर के द्वारा सभी विधि-विधान शास्त्रोक्त पद्धति से विधिवत् संपन्न किये गये। रात्रि में सर्वश्री पंडित लालचंदभाई, पंडित खीमचंदभाई, पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंद भारिल्ल आदि विद्वानों के मार्मिक प्रवचन हुए। प्रतिदिन पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का सार संक्षेप में स्थानीय विद्वान् पंडित भरत चक्रवर्ती द्वारा तमिल भाषा में समझाया जाता था।

इस अवसर पर सभी सत्साहित्य को घर-घर में पहुँचाने के निमित्त साधर्मी भाईयों की तरफ से कीमत घटायी गयी। आत्मधर्म व जैनपथ प्रदर्शक के भी अनेक ग्राहक बनाये गये। घाटकोपर मंडली द्वारा प्रदर्शित सांस्कृतिक कार्यक्रम बहुचर्चित रहे।

इस अवसर पर पधारनेवालों में उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त निम्न नाम उल्लेखनीय हैं—सर्वश्री पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित रतनचंदजी भारिल्ल विदिशा, पंडित नेमीचंदभाई रखियाल, ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी बेलोकर, ब्रह्मचारी हरिभाई, ब्रह्मचारी लाभानंदजी, ब्रह्मचारी नित्यानंदजी आदि विद्वान तथा श्रीमान् साहू

श्रेयांसप्रसादजी, सेठ लालचंद हीराचंद दोशी बम्बई, सेठ रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता, सेठ पन्नालालजी गंगवाल कलकत्ता, श्री सेठ भबूतमलजी भंडारी बैंगलोर, श्री फूलचंदजी पट्टा खातेगाँव, श्री हीरालाल माणिकचंद पाटोदी लोहारदा, श्री भगतरामजी दिल्ली, सेठ राजेन्द्रकुमारजी विदिशा, श्री माणिकलाल आर० गांधी बम्बई, श्री हीरालाल भीखाभाई बम्बई, श्री मनहरलालजी बैंगलोर, श्री हीरालालजी काला भावनगर, श्री बसंतभाई दोशी बम्बई, श्री तखतराजी कलकत्ता, श्री फूलचंदजी झांझरी उज्जैन, श्री अंबालालजी पहाड़े हैदराबाद, श्री कांतिलाल मोटानी, श्री शांतिलाल चिमनलाल शाह जवेरी बम्बई, श्री शांतिकुमारजी पाटनी छिंदवाड़ा।

## श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की मीटिंग

श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के ट्रस्टियों की मीटिंग श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता की अध्यक्षता में मद्रास पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर मद्रास में हुई। मीटिंग में अगले वर्ष का बजट स्वीकृत करने के साथ-साथ अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये; जिनमें बैंगलोर में जैन साहित्य शोध-संस्थान आरंभ करने, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय में १५ छात्रों को और प्रवेश देने, तीर्थों के जीर्णोद्धार के लिये अनुदान देने व तीर्थों के सर्वेक्षण योजना संबंधी मुख्य हैं।

*— बसंत दोशी*

## दिगम्बर जैन महासमिति, तमिलनाडु का गठन

दिनांक १०-३-७८ को मद्रास में पंच कल्याणक के विशाल पंडाल में दक्षिण के आन्ध्र, कर्नाटक, केरल एवं तमिलनाडु प्रदेशों के कार्यकर्ताओं का सम्मेलन सेठ लालचंद हीराचंद दोशी की अध्यक्षता में हुआ, जिसका उद्घाटन महासमिति के अध्यक्ष साहू श्रेयांसप्रसादजी ने किया। सम्मेलन में भाग लेने के लिये सभी प्रदेशों के कार्यकर्ता पधारे थे। सम्मेलन का संचालन श्री जयचंदजी लुहाड़े हैदराबाद, (संयोजक सम्मेलन) कर रहे थे। प्रतिनिधियों के अतिरिक्त सैकड़ों भाई-बहिनों ने भी भाग लिया। सम्मेलन में विचार रखनेवाले महानुभावों ने दिगम्बर जैन महासमिति की आवश्यकता तथा इसके संगठन को शक्तिशाली बनाने पर बल दिया। तमिलनाडु प्रदेश के कार्य हेतु एक तदर्थ समिति गठित की गयी। कर्नाटक, आंध्र व केरल के प्रतिनिधि अपने-अपने क्षेत्रों में शीघ्र बैठकें बुलाकर दिगम्बर जैन महासमिति के गठन का कार्यक्रम प्रारंभ करेंगे।

*— महेन्द्रकुमार जैन*

## कुन्दकुन्द की तपोभूमि पोन्नूरहिल की यात्रा

मद्रास पंच कल्याणक के बाद पूज्य श्री कानजीस्वामी सहस्राधिक यात्रियों के साथ परमपूज्य आचार्य श्री कुन्दकुन्द की तपोभूमि पोन्नूरहिल के दर्शनार्थ पधारे। साथ ही श्री पंडित खीमचंदभाई, पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंद भारिल्ल आदि अनेक विद्वान तथा अनेकानेक श्रीमान् भी थे। क्षेत्र के जीर्णोद्धार एवं बिजली की समुचित व्यवस्था के लिये संघ द्वारा २९ हजार रुपये क्षेत्र को दिये गये।

## पूज्य श्री कानजीस्वामी के अभूतपूर्व प्रवचन

**बैंगलौर** – यहाँ की समाज के हार्दिक आमंत्रण पर मद्रास पंच कल्याणक से लौटते हुए पूज्य गुरुदेवश्री ८ दिन के लिये यहाँ पधारे। दिनांक १४-३-७८ से दिनांक २०-३-७८ तक आपके प्रवचन चेंबर ऑफ कॉमर्स के कान्फ्रेंस हाल में प्रतिदिन प्रातः ८.३० से ९.३० एवं अपराह्न ३ से ४ तक समयसार के संवर अधिकार पर होते थे। सायं ७ से ७.४५ तक तत्त्वचर्चा भी होती थी। रात्रि को ८.१५ से १० बजे तक पंडित खीमचंदभाई, सेठ लालचंदभाई मोदी, पंडित बाबूभाई मेहता एवं डॉ० हुकमचंद भारिल्ल के प्रवचन होते थे।

स्वामीजी के प्रवचनों का लाभ लेने बाहर से पधारे सैकड़ों लोगों के अतिरिक्त हजारों स्थानीय लोगों ने भी लाभ लिया जिनमें वयोवृद्ध विद्वान सुव्वैया शास्त्री, पंडित अनंतराज शास्त्री, श्री पद्मनाभ शर्मा, डॉ० अम्पा नागराजैया आदि प्रमुख थे। इस अवसर पर हजारों रुपये का धार्मिक साहित्य बिका तथा आत्मधर्म व जैनपथ प्रदर्शक के सैकड़ों ग्राहक बने।

## श्री कुन्दकुन्द कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, द्वारा संचालित जैन साहित्य शोध-संस्थान का भव्य उद्घाटन

**बैंगलोर :** दिनांक १६-३-७८ को सायं ४ बजे श्री कुन्दकुन्द कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट द्वारा संचालित जैन साहित्य शोध-संस्थान का भव्य उद्घाटन पूज्य श्री कानजीस्वामी के सान्निध्य में मूडबिद्री के भट्टारक श्री स्वामी चारुकीर्तिजी महाराज की अध्यक्षता में श्री जी.एच. आदिराजैया, आई.ए.एस. के द्वारा सानंद संपन्न हुआ। समारोह के मुख्य अतिथि नरसिमराजपुरा के भट्टारक श्री स्वामी लक्ष्मीसेनजी महाराज थे। यह संस्थान श्री हम्पा नागराजैया (प्रोफेसर, बैंगलोर विश्वविद्यालय) के निर्देशन में संचालित होगा।

इसका कार्यक्षेत्र – फिलहाल कन्नड़ भाषा में ताड़पत्रों पर हस्तलिखित जो अपार जैन साहित्य अव्यवस्थित रूप में यत्र-पत्र पड़ा है, उसकी परिचयात्मक सूचियाँ बनाना, उसे सुरक्षित करने के उपाय करना, करने में सहयोग देना, एवं महत्त्वपूर्ण अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करना होगा।

उपर्युक्त शोध-संस्थान का कार्यालय श्री सीमंधर दिगम्बर जिनमंदिर, १४१, रंगास्वामी टेम्पिल स्ट्रीट, बैंगलोर-५३ में रखा गया है। *— बाबूभाई सी. मेहता, अध्यक्ष*

## कन्नड़ आत्मधर्म एवं बालबोध पाठमाला भाग १ का विमोचन

**बैंगलोर :** दिनांक १६-३-७८ को चेम्बर ऑफ कॉमर्स कान्फ्रेंस हॉल में पूज्य श्री कानजीस्वामी के सान्निध्य में मूड़बिद्री के भट्टारक श्री स्वामी चारुकीर्तिजी महाराज के द्वारा कन्नड़ आत्मधर्म का एवं नरसिमराजपुरा के भट्टारक श्री स्वामी लक्ष्मीसेनजी महाराज के द्वारा बालबोध पाठमाला भाग १ के कन्नड़ अनुवाद का विमोचन किया गया। दोनों ही भट्टारक महाराजों ने आत्मधर्म की विशेषताओं को बताते हुए समाज से कन्नड़ आत्मधर्म के ग्राहक बनने की हार्दिक अपील की। उक्त अवसर पर आत्मधर्म के संपादक डॉ० भारिल्ल ने तथा अनुवादक श्री पद्मनाभ शर्मा ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

ध्यान रहे कन्नड़ भाषा में आत्मधर्म का निकलना श्रीमान् सेठ भबूतमलजी भंडारी की उदारता एवं श्री मनहरभाई के प्रयत्नों का फल है। आपके द्वारा छहढाला, तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ आदि अनेक पुस्तकों का कन्नड़ में प्रकाशन हुआ है।

## और अब तमिल में भी

मद्रास पंच कल्याणक के अवसर पर – डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के संपादकत्व में हिंदी, मराठी और कन्नड़ भाषा में निकलनेवाले श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ के आध्यात्मिक मासिक पत्र 'आत्मधर्म' को अब मद्रास से तमिल भाषा में भी निकालने का निश्चय किया गया है। उसके लिये आवश्यक तैयारी आरंभ कर दी गयी है। मूलरूप से गुजराती में तो यह पहिले से ही निकलता है। इसप्रकार अब यह पाँच भाषाओं में प्रकाशित एवं जैन समाज में सर्वाधिक बिक्रीवाला लोकप्रिय आध्यात्मिक पत्र हो गया है। ध्यान रहे समस्त विवादों से परे यह एकमात्र विशुद्ध आध्यात्मिक पत्र है। *— अखिल बंसल*

## तमिल बालबोध पाठमाला भाग १ व बालपोथी भाग १ का विमोचन

**मद्रास :** पंच कल्याणक प्रतिष्ठा के पावन अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सान्निध्य में सेठ श्री रतनलालजी गंगवाल, कलकत्ता के द्वारा बालबोध पाठमाला भाग १ व सेठ श्री भबूतमलजी भंडारी, बैंगलोर द्वारा बालपोथी भाग १ के तमिल अनुवाद का विमोचन किया गया है। यह अनुवाद पंडित श्री भरत चक्रवर्ती शास्त्री एवं ..... द्वारा किया गया है।

## जैनबद्री की यात्रा

बैंगलोर के कार्यक्रम संपन्न कर पंडित बाबूभाई मेहता एवं डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल बाहुबली भगवान के दर्शनार्थ पधारे। जैन साहित्य शोध तथा सन् १९८१ में होनेवाले सहस्राब्दी समारोह आदि अनेक विषयों पर उनकी भट्टारक स्वामी श्री चारुकीर्तिजी से एक घंट तक महत्त्वपूर्ण चर्चा हुई। इसके तीन दिन पूर्व जैनपथ प्रदर्शक के संपादक पंडित रतनचंदजी भारिल्ल भी शताधिक यात्रियों के साथ बाहुबलीजी के दर्शनार्थ पधारे। उनका प्रवचन भी हुआ था तथा वर्तमान समाज की परिस्थितियों पर भट्टारकजी से महत्त्वपूर्ण चर्चा भी हुई।

## पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों से अभूतपूर्व धर्मप्रभावना

**हैदराबाद :** जैन समाज के विशेष आमंत्रण पर पूज्य श्री कानजीस्वामी पधारे। दिनांक २२-३-७८ तक प्रतिदिन प्रात: ८.३० से ९.३० अपराह्न ३ से ४ तक आंध्र सारस्वत परिषद् हॉल के पास बने विशाल पंडाल में आपके मार्मिक प्रवचन समयसार गाथा ५ व ६ पर हुए। रात्रि में ७ से ७.४५ तक तत्त्वचर्चा भी प्रतिदिन होती थी। हमारे विशेष आग्रह से उनके साथ ही पंडित लालचंदभाई, पंडित खीमचंदभाई, पंडित बाबूभाई एवं डॉ० हुकमचंद भारिल्ल भी पधारे। रात्रि को ८.१५ से १० बजे तक एवं प्रात: व दोपहर गुरुदेवश्री के प्रवचनों के उपरांत उनके भी प्रवचन होते थे। इसके पूर्व पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा भी ८ दिन को पधारे थे। उनके प्रवचनों से समस्त कार्यक्रम की एक सुंदर पूर्व-भूमिका तैयार हो गई थी।

समस्त कार्यक्रमों का लाभ स्थानीय समस्त जैन समाज ने तो लिया ही, बाहर से भी अनेकानेक आत्मार्थी जन लाभ लेने पधारे थे—जिनमें पद्मश्री ब्रह्मचारिणी सुमतिबेन शाह,

सोलापुर; पंडित नरेन्द्रकुमारजी भिसीकर, न्यायतीर्थ, सोलापुर; जैनपथ प्रदर्शक के संपादक पंडित रतनचंदजी शास्त्री, न्यायतीर्थ, एम.ए., विदिशा; श्री बाबूभाई जवेरी, बम्बई; श्री हीरालालजी काला, भावनगर; श्री शांतिलाल भायाणी, मद्रास आदि उल्लेखनीय हैं।

समस्त जैन समाज ने पूज्य गुरुदेवश्री का हार्दिक अभिनंदन किया। इस समारोह के मुख्य अतिथि श्री रामगोपाल राव एकबोटे (चीफ जस्टिस, आंध्र प्रदेश) थे। चारों समाजों के प्रतिनिधियों ने स्वामीजी का हार्दिक सम्मान किया।

रेलवे की अव्यवस्था के कारण वहाँ साहित्य नहीं पहुँच सका था, अतः तत्काल मद्रास से साहित्य मंगाया गया। अंतिम दो दिनों में ही पाँच हजार से भी अधिक का साहित्य बिका। साहित्य समाप्त हो जाने पर भी माँग बनी रही। अतः लगभग १५०० रुपयों का साहित्य भेजने का आदेश प्राप्त हुआ। आत्मधर्म व जैनपथ प्रदर्शक के अनेकानेक ग्राहक बने। श्री जयचंदजी लुहाड़े एवं श्री बाबूलालजी पहाड़े का इस कार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

## मायानगरी बम्बई में पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का भव्य आयोजन

**बम्बई :** मद्रास, बैंगलोर, हैदराबाद आदि स्थानों के कार्यक्रम सानंद संपन्न करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी दिनांक २६-३-७८ को बम्बई पधारे। यहाँ उनके प्रवचन ९-४-७८ तक धोबीतालाब के विशाल प्रांगण में बने पंडाल में प्रतिदिन प्रातः ८.१५ से ९.१५ तक, अपराह्न ३ से ४ तक हो रहे हैं। सायंकालीन चर्चा ७ से ७.४५ तक श्री कांतिभाई मोटानी के फ्लैट पर जहाँ गुरुदेवश्री विराजे हैं, होती है। गुरुदेवश्री के प्रवचनों का अभूतपूर्व आनंद हजारों लोग ले रहे हैं। धार्मिक साहित्य की बिक्री भी खूब हो रही है।

## वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का निरीक्षण

समिति के निरीक्षक पंडित गोविन्दप्रसादजी जैन ने बड़ामलहरा तथा अमरमऊ में चल रही वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का निरीक्षण किया। अमरमऊ की पाठशाला लगभग ६ माह से बंद थी, उसे पुनः चालू किया। बड़ामलहरा की पाठशालाएँ सुचारूरूप से चल रही हैं। यहाँ एक प्रौढ़ पाठशाला भी प्रारंभ की गई।

यहाँ के डॉ० शीतलप्रसादजी फौजदार अच्छे उत्साही युवक कार्यकर्ता हैं। मध्यप्रदेश के छतरपुर, टीकमगढ़ और सागर जिलों में पाठशालाओं के प्रचार-प्रसार की उनकी योजना है। तद्नुसार ये कार्य कर रहे हैं। *—मंत्री, भा० वी० वि० पाठशाला समिति*

## महावीर कीर्तिस्तंभ का अनावरण

**विदिशा :** नवनिर्मित महावीर कीर्तिस्तंभ का अनावरण महावीर जयंती के शुभ अवसर पर श्रीमान् पंडित बाबूभाई मेहता की अध्यक्षता में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री वीरेन्द्रकुमारजी सकलेचा द्वारा संपन्न हुआ। २१ फुट उत्तंग ठोस संगमरमर का यह महावीर कीर्तिस्तंभ नगर के मध्य स्थित विशाल पार्क में लगभग ४० हजार की लागत से बनाया गया है।

इसके साथ ही श्री भाई दुर्जनलालजी जैन के द्वारा प्रतिष्ठापित भगवान पद्मप्रभस्वामी की पद्मासन मनोज्ञ प्रतिमा विधि-विधान के साथ वेदी में विराजमान की जावेगी।

इस अवसर पर दिनांक २०, २१ एवं २२ अप्रेल १९७८—तीन दिन तक श्री बाबूभाई मेहता के आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ भी मिलेगा। — *अध्यक्ष, महावीर जयंती उत्सव समिति*

## आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन

**फिरोजाबाद :** श्री दिगम्बर जैन मेले के शुभावसर पर यहाँ दिनांक २९-३-७८ से ४-४-७८ तक आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन किया जा रहा है। शिविर में श्रीमान् पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा तथा पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा आदि विद्वान पहुँच रहे हैं।

कार्यक्रम के विस्तृत समाचार अगले अंक में दिये जावेंगे। — *जयकुमार जैन, मंत्री*

## एलोरा ( जिला औरंगाबाद ) पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव

यहाँ दिनांक १०-५-७८ से दिनांक १८-५-७८ तक पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव विशालरूप से संपन्न होगा। अनेक धार्मिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया है। विश्वविख्यात, प्रसिद्ध, प्राचीन, सुंदरतम, कला-पूर्ण गुफाओं के देखने तथा विशालकाय १६ फुट ऊँचे पद्मासन विराजमान श्री पार्श्वप्रभु के दर्शन का भी सुयोग होगा। इस अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासमिति (पश्चिमाचल) का अधिवेशन भी होगा। पधारकर अवश्य धर्मलाभ प्राप्त करें। निमंत्रण पत्रिकाएँ शीघ्र ही प्रेषित की जा रही हैं।

— *पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति, एलोरा (औरंगाबाद)*

## आवश्यक सूचना

ग्रीष्मकालीन परीक्षाओं के लिये प्रवेशफार्म भरकर हर हालत में ३०-४-७८ तक भेज देवें। इसके पश्चात् १५-५-७८ तक दस पैसे प्रति छात्र के हिसाब से लेट फीस देने पर फार्म स्वीकार किये जा सकेंगे। ये परीक्षायें जुलाई ७८ के दूसरे सप्ताह में ली जावेंगी।

इसमें केवल बालबोध पाठमाला भाग १, २, ३ तथा वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३—इन छह भागों की ही परीक्षाएँ होती हैं। अतः इन्हीं के फार्म भरे जावें। तत्त्वज्ञान पाठमाला, छहढाला, विशारद आदि की परीक्षाएँ अभी नहीं होंगी।

*— मंत्री, वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड*

**भोपाल :** विगत दिनों श्री अभयकुमारजी जैन के संयोजकत्व में अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा स्थापित की गई। फैडरेशन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु स्थानीय शाखा के सभी सदस्य कटिबद्ध हैं। शीघ्र ही क्षेत्रीय शाखाओं के गठन की घोषणा की जावेगी। *— अध्यक्ष*

**चाँदखेड़ी ( झालावाड़ ) :** श्री दिगम्बरजैन अतिशय क्षेत्र चाँदखेड़ी (खानपुर) में प्रतिवर्षानुसार भगवान आदिनाथ के जन्म कल्याणक का चैत बदी ६ से ९ तक वार्षिक मेला तय किया गया है। मेले में विभिन्न कार्यक्रमों के साथ-साथ दिनांक ९-४-७८ से १६-४-७८ तक नेत्रशिविर का भी आयोजन किया जा रहा है। *—केवलचंद पाण्डया*

**दुर्ग :** श्री पंडित निर्मलकुमारजी दमोह वालों के पधारने से स्थानीय समाज उनके आध्यात्मिक प्रवचनों से लाभ ले रहा है। तीनों समय आपके मार्मिक प्रवचन चल रहे हैं। आप यहाँ लगभग २-३माह रुकेंगे। *— कुंदनमल सेठी*

**लवाण :** ११ एवं १२ मार्च ७८ को अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के केन्द्रीय अध्यक्ष श्री अखिल बंसल तथा पंडित रमेशकुमारजी ललितपुरवाले यहाँ पधारे। पंडित रमेशकुमारजी के चार प्रवचन आयोजित किये गये। आपके प्रवचनों से समाज में अच्छी धर्म प्रभावना हुई। फैडरेशन की मीटिंग तथा फैडरेशन के सदस्यों द्वारा भक्ति-संगीत का कार्यक्रम भी रखा गया। निकट भविष्य में फैडरेशन की ओर से सात दिवसीय शिक्षण-शिविर लगाने का कार्यक्रम है। बच्चों में धर्म के प्रति रुचि जागृत हो इसके लिये यहाँ वीतराग-विज्ञान पाठशाला भी प्रारंभ की गयी है। *— गोकुलचंद जैन*

**सीकर ( राजस्थान ) :** भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के निरीक्षक श्री पंडित गोविन्दप्रसादजी जैन कुचामनसिटी, कुचामन रोड, लाडनूँ आदि शहरों में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण करते हुए दिनांक ३-२-७८ को यहाँ पधारे। यहाँ आपके दस दिनों तक बीसपंथी नसियांजी में तथा तेरापंथी मंदिर में दोनों समय प्रवचन चलते थे।

समाज ने बड़ी ही रुचि, उत्साह और लगन के साथ प्रवचनों का लाभ लिया और जयपुर तथा सोनगढ़ द्वारा संचालित शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों में भाग लेने की जिज्ञासा प्रकट की तथा सीकर में भी शिविर लगाने का अत्यधिक आग्रह किया।

**फुटेराकलां ( म.प्र. ) :** श्री पंडित केसरीचंदजी 'धवल' के पधारने से अपूर्व धर्म प्रभावना हुई। दिनांक ६-३-७८ से २०-३-७८ तक दोनों समय आपके प्रवचन होते थे।

**— सेठ भगवानदास**

❀✻❀✻

# प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें :—

(१) आत्मधर्म के जिन ग्राहकों का चंदा जून माह में समाप्त हो रहा है, हमने उनको इस अंक के साथ ही मनिआर्डर कूपन भेजना प्रारंभ कर दिया है। कार्य की सुविधा की दृष्टि से यह कूपन तीन किश्तों में भेजे जावेंगे। अर्थात् कुछ ग्राहकों को अप्रेल अंक के साथ, कुछ को मई अंक के साथ तथा शेष को जून के साथ। अत: जिन बंधुओं को मनिआर्डर फार्म मिलें वे उन्हें भरकर तुरंत ही भेजने का कष्ट करें।

(२) इस वर्ष से यह व्यवस्था की जा रही है कि जो ग्राहक जिस माह में शुल्क जमा करावेंगे उन्हें उसी माह से आगामी पूरे १२ माह के लिये ग्राहक बनाया जायेगा। अत: उन्हें पुराने अंक नहीं भेजे जावेंगे।

(३) मनिआर्डर फार्म की निचली स्लिप पर अपना नाम तथा पता स्पष्टतया अवश्य लिखें।

(४) इस माह भेंट में मिलनेवाली पुस्तक सभी ग्राहकों को सोनगढ़ से भेजी जा रही है।

# श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२००४ ( राजस्थान )

महोदय,

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित बारहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष उदयपुर (राजस्थान) में दिनांक २२ मई से ९ जून, १९७८ तक होना निश्चित हुआ है। उक्त अवसर पर धार्मिक अध्ययन करानेवाले अध्यापक बंधुओं को एवं मुमुक्षु भाइयों को शिक्षण-विधि में प्रशिक्षित किया जायेगा।

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का लाभ भी कुछ दिनों के लिये प्राप्त होगा।

उक्त शिविर में विद्वद्वर्य पंडित खीमचंदभाई सोनगढ़, पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, पंडित रतनचंदजी शास्त्री विदिशा, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा के पधारने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। श्री युगलजी कोटा के पधारने की भी पूरी संभावना है। इनके अतिरिक्त शिक्षण-प्रशिक्षण में सहयोग देनेवाले अनेक प्रशिक्षित अध्यापक भी पधारेंगे।

उक्त अवसर पर समागत विद्वानों के प्रवचनों का लाभ तो प्राप्त होगा ही; साथ में बालकों, प्रौढ़ों और महिलाओं के लिये शिक्षण-कक्षाओं की भी व्यवस्था रहेगी।

धार्मिक शिक्षण-संस्थाओं के अधिकारियों एवं प्रधानाध्यापकों से अनुरोध है कि वे अपने अध्यापक बंधुओं को इस शिविर में अवश्य शामिल करें एवं स्वयं भी पधारें। अध्यापक महोदयें से भी निवेदन है कि वे स्वयं अधिक से अधिक साथियों सहित प्रशिक्षण में अवश्य ही सम्मिलित हों।

समागत बंधुओं के ठहरने एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था रहेगी।

प्रशिक्षण कक्षाओं में सम्मिलित होनेवाले बंधुओं से आग्रह है कि वे निम्नलिखित **प्रवेश-प्रतिबंधों** पर विशेष ध्यान दें—

बालबोध-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिये बालबोध पाठमाला भाग १, २, ३ की तथा प्रवेशिका-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिये वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३ की प्रवेश-प्रतियोगितात्मक लिखित परीक्षा दिनांक २१ मई को दोपहर बाद उदयपुर में ली जावेगी, जिसमें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णता प्राप्त करना आवश्यक होगा। अतः प्रवेशार्थी उक्त पुस्तकों की पूरी-पूरी तैयारी करके आवें। जो व्यक्ति उक्त पुस्तकें पहले ही उत्तीर्ण कर चुके हैं, उन्हें यह परीक्षा देना आवश्यक नहीं है। ध्यान रहे प्रवेशिका-प्रशिक्षण में उन्हें ही प्रवेश दिया जायेगा जो बालबोध-प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हों।

आपके यहाँ से कितने व कौन-कौन भाई-बहिन शिविर में पधार रहे हैं, इसकी सूचना हमारे जयपुर कार्यालय को तथा निम्नलिखित पते पर उदयपुर दिनांक १० मई, १९७८ तक अवश्य भेज देवें ताकि उनके ठहरने एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था की जा सके।

श्री उग्रसेनजी बंडी, बंडी गारमेंट्स
बड़ा बाजार, उदयपुर (राजस्थान)

**डॉ० हुकमचंद भारिल्ल**
रजिस्ट्रार

Registration. No. RJ-2712

# हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन

| | | | |
|---|---|---|---|
| मोक्षशास्त्र | १२-०० | मोक्षमार्गप्रकाशक | प्रेस में |
| समयसार | १२-०० | पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व | १०-०० |
| समयसार पद्यानुवाद | ०-७० | तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ | ५-०० |
| समयसार कलश टीका | ६-०० | " " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में) | २-०० |
| प्रवचनसार | १२-०० | मैं कौन हूँ? | १-०० |
| पंचास्तिकाय | ७-५० | तीर्थंकर भगवान महावीर | ०-४० |
| नियमसार | ५-५० | वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर | ०-२५ |
| नियमसार पद्यानुवाद | ०-४० | अपने को पहचानिए | ०-५० |
| अष्टपाहुड़ | १०-०० | अर्चना (पूजा संग्रह) | ०-४० |
| समयसार नाटक | ७-५० | मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर) | ०-५० |
| समयसार प्रवचन भाग १ | ६-०० | पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य | ०-६५ |
| समयसार प्रवचन भाग २ | प्रेस में | कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य | ०-३० |
| समयसार प्रवचन भाग ३ | ५-०० | सत्तास्वरूप | १-७० |
| समयसार प्रवचन भाग ४ | ७-०० | सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १ | प्रेस में |
| आत्मावलोकन | ३-०० | अनेकांत और स्याद्वाद | ०-३५ |
| श्रावकधर्म प्रकाश | ३-५० | युगपुरुष श्री कानजीस्वामी | १-०० |
| द्रव्यसंग्रह | १-५० | वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका | ३-०० |
| लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका | ०-४० | सत्य की खोज (भाग १) | २-०० |
| प्रवचन परमागम | २-५० | आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय — साधारण : | २-०० |
| धर्म की क्रिया | २-०० | आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय — सजिल्द : | ३-०० |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १ | १-५० | | |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २ | १-५० | | |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३ | १-५० | | |
| तत्त्वज्ञान तरंगिणी | ५-०० | | |
| अलिंग-ग्रहण प्रवचन | १-६० | | |
| वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन) | १-०० | | |
| बालपोथी भाग १ | ०-६० | | |
| बालपोथी भाग २ | प्रेस में | | |
| ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव | ४-०० | | |
| बालबोध पाठमाला भाग १ | ०-५० | | |
| बालबोध पाठमाला भाग २ | ०-७० | | |
| बालबोध पाठमाला भाग ३ | ०-७० | | |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १ | ०-७० | | |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २ | १-०० | | |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३ | १-०० | | |
| तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ | १-२५ | | |
| तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २ | १-२५ | | |
| जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २ | ३०-०० | | |

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

*If undelivered please return to :*
**प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म**
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४